भारतीय वैश्विक परिषद

सप्रू हाउस

****

प्रो. कुलभूषण वारिकू की पुस्तक

'द क्रॉसरोड्सः कश्मीर- इंडियाज़ ब्रिज टू शिंजियांग'

पर

आईसीडब्ल्यूए पुस्तक चर्चा

23 **जनवरी** 2025

पुनीत गौड़: यहाँ उपस्थित सभी लोगों को नमस्कार। शुरू करने से पहले, मैं सभी से अनुरोध करता हूँ कि कृपया अपने मोबाइल फोन को साइलेंट मोड पर कर लें। पैनल में शामिल माननीय सदस्य, विशिष्ट अतिथिगण, देवियों और सज्जनों, प्रो. के. वारिकू द्वारा लिखी किताब, ***द क्रॉसरोड्स: कश्मीर- इंडियाज़ ब्रिज टू शिंजियांग*** पर चर्चा करने के लिए सप्रू हाउस में आप सभी का स्वागत है। इस पुस्तक पर चर्चा करने के लिए पैनल में विशिष्ट विशेषज्ञ शामिल हुए हैं। मैं आज की पुस्तक चर्चा के अध्यक्ष, पाकिस्तान में भारत के पूर्व उच्चायुक्त और पूर्व डीसी आईसीडब्ल्यूए- राजदूत टी.सी.ए. राघवन सर का हार्दिक स्वागत करता हूँ। पुस्तक के लेखक प्रो. के. वारिकू का स्वागत करना मेरे लिए बहुत सम्मान की बात है। जेएनयू में ये मेरे पीएचडी सुपरवाइज़र भी रहे हैं। मैं आज पैनल में शामिल सदस्यों-अध्यक्ष, सेंटर फॉर चाइना एनालिसिस एंड स्ट्रैटेजी, नई दिल्ली के अध्यक्ष श्री जयदेव रानाडे सर और सीनियर फेलो, एमपी- आईडीएसए, नई दिल्ली के डॉ. अशोक के. बेहुरिया का भी हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

हम पैनल में शामिल होने वाले अपने माननीय सदस्यों के आभारी हैं कि उन्होंने हमारे आमंत्रण को स्वीकार किया। कार्यक्रम इस प्रकार होगा। सबसे पहले आईसीडब्ल्यूए की अतिरिक्त सचिव श्रीमती नूतन कपूर महावर महोदया स्वागत भाषण देंगी। इसके बाद अध्यक्ष महोदय अपने विचार रखेंगे, जो बाद में आज की कार्यवाही का संचालन भी करेंगे। फिर, पुस्तक के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी जाएगी। प्रोफेसर के. वारिकू अध्यक्ष

महोदय के भाषण के बाद अपनी बात रखेंगे, इसके बाद पैनल के सदस्य अपने विचार व्यक्त करेंगे। चर्चा के बाद प्रश्नोत्तर सत्र होगा, जिसका संचालन अध्यक्ष महोदय द्वारा किया जाएगा।

अब मैं आईसीडब्ल्यूए की अतिरिक्त सचिव श्रीमती नूतन कपूर महावर से अनुरोध करता हूँ कि कृपया वे स्वागत भाषण दें। धन्यवाद।

नूतन कपूर महावर: धन्यवाद पुनीत। राजदूत राघवन, माननीय विशेषज्ञों, छात्रों और दोस्तों। प्रोफेसर वारिकू की किताब ***द क्रॉसरोड्सः कश्मीर- इंडियाज़ ब्रिज टू शिंजियांग***, जहां एक तरफ व्यापार और कनेक्टिविटी की बात करता है तो दूसरी तरफ एंग्लो- रूसी खेल एवं उसके प्रभाव की गहरी साज़िशों के बारे में।

व्यापार और संपर्क ऐतिहासिक रूप से अंतरराष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण मुद्दे रहे हैं। इतिहास से पता चलता है कि ये दोनों मुद्दे एक दूसरे से वेल्क्रो की तरह चिपके हुए हैं जिसकी वजह से कहीं मैत्रीपूर्ण सभ्यतागत संबंध बने तो कहीं युद्ध, विवाद और साम्राज्य का निर्माण हुआ।

दूसरी श्रेणी का एक उदाहरण पिछली शताब्दियों के सिल्क रूट के साथ यूरेशिया में होने वाला खेल है। यह खेल व्यापार का था जिसका इस्तेमाल पहले राजनीतिक हस्तक्षेप और फिर राजनीतिक एवं क्षेत्रीय नियंत्रण हासिल करने के बहाने के रूप में किया जाता था। व्यापार इस खेल का कारण था। संदेह, साज़िश, कपट, षड्यंत्र इस खेल के खिलाड़ियों की शतरंज जैसी चालों को आधार देते हैं।

मैं इस खेल और उपनिवेशवाद का उदाहरण लेती हूँ। हालांकि, विश्व इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ व्यापार ने शत्रुता, विवाद, साम्राज्य और उत्पीड़न को जन्म दिया है।

हमने सोचा था कि वह युग समाप्त हो गया है।

हालांकि, वर्तमान भू- राजनीति और वैश्विक उथल- पुथल की पृष्ठभूमि में, ग्रेट गेम 2.0 के फिर से शुरु होने का हवाला दिया जा रहा है जो दर्शाता है कि औपनिवेशिक युग की अंतर्धाराएं अभी भी हावी हैं। विश्लेषकों को व्यापार और कनेक्टिविटी के संघर्षपूर्ण पहलुओं की झलक अमेरिकी- चीन के बीच बढ़ती रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता, व्यापार और प्रशुल्क युद्धों, विश्वास में कमी के बीच गतिरोध वाले डब्ल्यूटीओ और चीन की वैश्विक पहलों, विशेष रूप से बेल्ड एंड रोड इनिशिएटिव में देखने को मिल रहा है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि व्यापार विवाद, कनेक्टिविटी गणित और भू- राजनीति का एक उचित मिश्रण बनाते हैं।

आज के समय की चीन- अमेरिका प्रतिद्वंद्विता और विश्व के विभिन्न रंगमंचों में इसकी अभिव्यक्ति और व्यापार के शस्त्रीकरण की समग्र प्रवृत्ति औपनिवेशिक युग के व्यापार युद्धों का ही वर्तमान विस्तार है। हमें इसे स्वीकार करना चाहिए और इन नज़रियों एवं प्रवृत्तियों को नकारने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए। वर्तमान भू- राजनीतिक उथल- पुथल से लाभ उठाते हुए, हमें एक नई विश्व व्यवस्था तैयार करने की जरूरत है, एक ऐसी व्यवस्था जो इतिहास को पलट दे और व्यापार को एक सकारात्मक और लाभकारी शक्ति के रूप में शामिल करे जो शांति को बढ़ावा दे। क्या हम ऐसा कर सकते हैं?

यह कहने की कोई जरूरत नहीं है कि हमें ग्रेट गेम 2.0 की आवश्यकता नहीं है।

ग्रेट गेम, उपनिवेशवाद और पिछली शताब्दियों से मिले सबक हमें अंतरराष्ट्रीय राजनीति में व्यापार को कमतर आंकने को नहीं कहते। इसके बजाय, वे हमें इसके महत्व और अपार संभावनाओं के बारे में बताते हैं, अगर इसका सही तरीके से इस्तेमाल किया जाए। व्यापार महत्वपूर्ण है। यह अंतर- देश, अंतर- क्षेत्रीय और अंतर- सभ्यतागत मेल- मिलाप का एक साधन है। व्यापार संचालन में परस्पर निर्भरता है। निकट भविष्य में व्यापार अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता बनी रहेगी।

हालांकि, यह महत्वपूर्ण है कि नई विश्व व्यवस्था, जिसका ज़िक्र मैंने अभी- अभी किया है, व्यापार को बेहतर जीवन के साधन, सभी के लिए समृद्धि के सूचक, विकास के साधन के रूप में इस्तेमाल करें, न कि युद्धों और विवादों के अगुआ के रूप में जैसा कि हम आज ऐतिहासिक और समकालीन संदर्भ में देखते हैं। सहकारी, पारदर्शी और विश्वास- आधारित नज़रिया, निश्चित रूप से आवश्यक शर्त है।

मुझे लगता है कि व्यापार को शांति और सुरक्षा से जोड़ने वाले संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव भी हैं। व्यापार और सुरक्षा संबंध डब्ल्यूटीओ में भी मौजूद हैं। इन पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

कश्मीर और शिंजियांग के बारे में कुछ बातें। ज़मीनी संपर्क, व्यापार और सीमा पार सामुदायिक संबंधों का महत्व किसी से छिपा नहीं है। हालांकि, भारत की आज़ादी के बाद से ही चीन- पाक के बीच "सदाबहार" संबंध की भू- राजनीति ने भारत के लिए शांतिपूर्ण सीमा की संभावना को समाप्त कर दिया है और कश्मीर के शिंजियांग के साथ संबंध अभी भी खराब बने हुए हैं।

इसके अलावा, चीन की हरकतें हमें परेशान करने वाली हैं। बीआरआई सिल्क रोड के साथ एक आधिपत्यवादी नज़रिया का पुनर्जन्म हुआ है, एक ऐसा नज़रिया जो भारत के नुकसान के लिए ग्रेट गेम युग की याद दिलाने वाले प्रभाव क्षेत्रों का निर्माण करना चाहता है। केवल इस बार, आधिपत्य चीन का है। सीपीईसी उन नज़रियों को गहरा बनाता है जो पहले काराकोरम राजमार्ग को बनाने में परिलक्षित हुए थे, जैसा कि इस किताब में भी कहा गया है, जिससे भारत को इस मुद्दे पर अपना रुख स्पष्ट करने के लिए विवश होना पड़ा।

प्रोफेसर वारिकू कश्मीर से हैं और उन्होंने अपना जीवन यूरेशियन, हिमालयी और मध्य एशियाई क्षेत्रों के अध्ययन के लिए समर्पित कर दिया है। उनका नज़रिया अनूठा है। उन्होंने मुझे बताया कि यह किताब उनके 30 वर्षों के काम और समझ को समेटे हुए है। बहुत शोध कर लिखी गई इस किताब पर मैं एक दिलचस्प चर्चा की आशा करती हूँ। पैनल के सदस्यों को मेरी शुभकामनाएं। धन्यवाद।

पुनीत: धन्यवाद महोदया। अब मैं राजदूत टी.सी.ए. राघवन जी से अनुरोध करता हूँ कि वे अपने विचार व्यक्त करें और कार्यवाही का संचालन करें। धन्यवाद महोदय।

टी.सी.ए. राघवन: सबसे पहले, आप सभी को मेरा नमस्कार। आईसीडब्ल्यूए, मुझे आमंत्रित करने के लिए बहुत- बहुत धन्यवाद। नूतन, आपके स्वागत भाषण के लिए आपको बहुत- बहुत धन्यवाद। बेहद रोचक। वास्तव में उन्होंने ऐसी स्थिति तैयार कर दी है जिसमें मुझे अपनी बात कहना आसान हो जाएगा। मैं प्रोफेसर वारिकू को न केवल इस पुस्तक के लिए बधाई देना चाहता हूँ बल्कि उनके इतने वर्षों की मेहनत, कश्मीर के इतिहास को व्यापक संदर्भ में, इसके मध्य एशियाई संदर्भ और ट्रांस- हिमालयी संदर्भ में खोज के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयासों को भी बधाई देना चाहता हूँ। कई मायनों में, यह एक अकेला रास्ता रहा है। ऐसे बहुत कम विद्वान हैं जिन्होंने इस विशेष विषय के अध्ययन पर इतना समय लगाया है। उनकी पत्रिका- *हिमायन एंड सेंट्रल एशियन स्टडीज़* वर्तमान साहित्य में सबसे अलग है।

कई मायनों में यह पुस्तक उनके द्वारा किए गए महान शोध का परिणाम है जो उन्होंने समय- समय पर किया है और जिसे प्रकाशित किया गया है। यह जांच के कई नए रास्ते खोलता है। मुझे आशा है कि जांच के इन रास्तों का अनुसरण किया जाएगा। लेकिन निश्चित रूप से, मैं प्रोफेसर वारिकू को उनके इस समर्पण के लिए बहुत- बहुत बधाई देना चाहता हूँ। जैसा कि मैंने कहा, यह एक अकेला रास्ता रहा है और यह अच्छा है कि इस विषय पर चर्चा करने के लिए हमारे पैनल में इतने विशेषज्ञ सदस्य हैं। सेंटर फॉर चाइना एनालिसिस एंड स्ट्रैटेजी के प्रोफेसर श्री जयंत रानाडे संभवतः भारत के सबसे विख्यात चीनी पर्यवेक्षकों में से एक हैं और उन्होंने चीन का अध्ययन करने में कई वर्ष लगाए हैं, न केवल चीन की घरेलू राजनीति बल्कि चीन की बाहरी परिस्थिति, इन बाहरी संबंधों का भी अध्ययन किया है।

इसलिए मुझे लगता है कि आज के भू- राजनीतिक संदर्भ में हम शिनजियांग/ चिनशियांग/ झिंजियांग- कश्मीर इंटरफेस को कैसे देखते हैं। डॉ. अशोक बेहुरिया पाकिस्तान के मामले में कई वर्षों से भारत के सबसे दक्ष पर्यवेक्षकों में से एक रहे हैं और उन्होंने पाकिस्तान की आंतरिक गतिशीलता, भारत- पाकिस्तान संबंधों, पाकिस्तान के कब्ज़े वाले कश्मीर और कई अन्य संबंधित मुद्दों का बहुत स्पष्टता एवं अंतर्दृष्टि के साथ अध्ययन किया है। निश्चित रूप से, जितने वर्षों से मैं पाकिस्तान से जुड़ा हुआ हूँ, मैंने पाया है कि उनके लेखन में हमेशा कुछ ऐसा होता है जिस पर आप विश्वास कर सकते हैं, क्योंकि इसमें अतिरिक्त अंतर्दृष्टि एवं अतिरिक्त संदर्भ मिलता है जो अन्यथा भारत में पाकिस्तान के बारे में विश्लेषणों में अक्सर नदारद रहता है।

मैं यह अनुमान नहीं लगाना चाहता कि प्रोफेसर वारिकू क्या कहेंगे और पैनल के सदस्यों का क्या विचार होगा लेकिन मैं वास्तव में यह कहना चाहता हूँ कि मुझे यह किताब पढ़कर कितना अच्छा लगा। यह किताब बहुत हद तक कश्मीर- शिंजियांग इंटरफेस का एक ऐतिहासिक पहलू है, तीन शक्तियों- मुख्य रूप से रूस और ब्रिटेन लेकिन कुछ सीमा तक चीन के बीच अंतर्संबंध की कहानी है। लेकिन एक और दिलचस्प बात यह है कि इस किताब को ध्यान से पढ़ने पर यह समझ में आता है कि कैसे समय- समय पर कश्मीर दरबार या जम्मू-कश्मीर सरकार ने कुछ एजेंसी को बनाए रखा और एक स्वतंत्र भूमिका निभाने में सक्षम रही। अलग- अलग समय पर यह भूमिका कितनी महत्वपूर्ण थी।

यह सांस्कृतिक, राजनीतिक, व्यापारिक संपर्कों, पुराने व्यापारिक मार्गों की कहानी है और क्योंकि प्रोफेसर वारिकू उस क्षेत्र को अच्छी तरह से जानते हैं इसलिए वे उस चर्चा और विश्लेषण को बहुत अच्छी तरह से जीवंत करने में सक्षम हैं, जिससे कथा में एक निश्चित नाटकीय शक्ति है। कुछ अध्याय विशेष रूप से दिलचस्प हैं, जैसे शाहिदुल्लाह मामला, भारत के काशगर वाणिज्य दूतावास की कहानी। लेकिन मुझे जो अंश सबसे अधिक पसंद आए, वे दो विशेष घटनाएं थीं। पहली, 1947-48 में गिलगित के बारे में है, ऑपरेशन दत्ता खेल, जब एक युवा ब्रिटिश अधिकरी, वो कोई कैप्टन या मेज़र था, ने, वास्तव में तख्तापलट किया। उसने मन बना लिया था कि गिलगित को पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिए और संभवतः वह अपने वरिष्ठों को मनाने में सफल रहा। या

शायद उसे अपने वरिष्ठों से प्रोत्साहन की थोड़ी सी झलक मिली। लेकिन मुझे पता है कि यह आपका नज़रिया है। लेकिन मेरे विचार से, यह इतनी सी नीति नहीं थी जिसे बहुत ऊपर से तैयार किया गया था, बल्कि यह स्थानीय पहल द्वारा नीति को आगे ले जाने का एक उदाहरण था और स्थानीय पहल ने आखिरकार ऐसी स्थिति पैदा कर दी जहाँ नीति को इसे समायोजित करने के लिए खुद को ढालना पड़ा।

मामला चाहे कुछ भी हो, यह एक तख्तापलट था। और इसके बाद दक्षिण एशिया के इतिहास में इसका बहुत बड़ा परिणाम देखा गया।

दूसरा रोचक प्रसंग जिसे पढ़कर मुझे बहुत आनंद आया, मैंने इसे पहले भी पढ़ा था और फिर से पढ़ा, यह कुछ कज़ाख अधिकारियों, चीन के अधिकारियों द्वारा चीन में हुई क्रांति के बाद कश्मीर में शरण लेने के फैसले और फिर उनके साथ क्या हुआ, के बारे में था। इस सफ़र में वे भोपाल पहुँच गए, जहाँ जाहिर है कि गर्मी ने उनमें से अधिकांश को मार डाला होगा। लेकिन पढ़ने के लिए यह कहानी बहुत रोचक है। सामान्य तौर पर, यह किताब कई सवाल उठाती है, जिनमें से कुछ का जवाब दिया गया है लेकिन कुछ को अनुत्तरित रहने दिया गया है क्योंकि ये घटनाएं सामने आ रही हैं। और इनमें से एक अनुत्तरित सवाल यह है कि, और सवाल ऐसा कुछ है जिसके बारे में मुझे नहीं लगता कि सरकार का उस विषय में कोई स्पष्ट रुख है लेकिन यह ऐसा कुछ है जिसके बारे में हम विचारक समूहों और विश्लेषणों में, विश्लेषण करने वाले हलकों में सोचना चाहिए- कश्मीर में अंतिम चरण क्या है? मेरे कहने का मतलब है कि हम किस इष्टतम भविष्य की कल्पना करते हैं?

एक, जैसा कि नूतन ने बताया और यह कुछ ऐसा है जिस पर हम सभी विश्वास करते हैं कि हमें व्यापार पर एक निश्चित प्रगतिशील नजरिया अपनाना होगा और अपने क्षेत्र के भविष्य को खुद को बंद न करके बल्कि अपने पूरे क्षेत्र के साथ संबंधों को बढ़ाने के संदर्भ में परिभाषित करना होगा और जाहिर है, ऐसा करने का सबसे अच्छा तरीका ज़मीनी व्यापार है।

लेकिन क्या हम उस सामान्य सिद्धांत को कश्मीर पर लागू कर सकते हैं? उदाहरण के लिए, 2014 से, 2004 से 2014 के बीच एक निश्चित साहसिक प्रयोग किया गया था जो नियंत्रण रेखा को नरम करने का था। और इसका एक हिस्सा यह था कि आप तलहटी- जम्मू क्षेत्र और पाकिस्तान के कब्ज़े वाले कश्मीर के कुछ हिस्से, के बीच व्यापार मार्ग खोल दें। दूसरा उरी और मुज़फ्फराबाद के बीच की घाटी में था।

तीसरा भाग, जिसका अभी तक प्रयास भी नहीं किया गया था लेकिन लक्ष्य बना हुआ था, वह था लद्दाख में स्कार्दू- कारगिल के बीच ऐसा मार्ग खोलना। इसका मतलब यह हुआ कि आप पूरी नियंत्रण रेखा को कुछ सीमा तक सुराखदार बना दें, इसे खोलें, इसे सुलभ बनाएं और फिर व्यापक संदर्भ में भूमि व्यापार के इस पहलू के बारे में विचार करें क्योंकि आखिर में यही एक रास्ता है। जैसा कि मैंने कहा, वह प्रक्रिया समाप्त हो गई या कम- से- कम 2014-2015 से निलंबित है।

क्या आज के संदर्भ में इसे फिर से स्थापित करने के बारे में सोचना संभव है, सुरक्षा की संपूर्ण स्थिति को देखते हुए, जिस तरह से यह विकसित हुई है, अफगानिस्तान में क्या हो रहा है, पाकिस्तान- अफगानिस्तान इंटरफेस में क्या हो रहा है, हमारे लिए सुरक्षा निहितार्थ? क्योंकि अगर ऐसा नहीं है तो हमें दूसरे इष्टतम समाधानों के बारे में विचार करना होगा। यह व्यापार और खुलेपन एवं व्यापक क्षेत्र का हिस्सा बनने के हमारे समग्र दृष्टिकोण के साथ मेल नहीं खा सकता है लेकिन शटर गिरने और आने वाले तूफान से खुद को बचाने की कोशिश करने से बेहतर विकल्प हो सकता है। क्योंकि यह संभव है कि व्यापक वैश्विक परिवर्तनों को देखते हुए, जो हो रहे हैं, कुछ लोग कहते हैं कि हम पहले से ही दूसरे शीत युद्ध की स्थिति में हैं, शायद यह बेहतर है कि हम अपनी स्थिति की रक्षा करने और अपनी सुरक्षा को मजबूत करने एवं बाहर से आने वाले संभावित प्रभावों से स्वयं को बचाने पर ध्यान दें।

मुझे लगता है कि कश्मीर पर बहस वास्तव में इन दो द्विआधारी विकल्पों के बीच में है और जब हम आगे देखते हैं तो हमें यह सोचना होगा कि आगे का रास्ता क्या है और हमारे अपने राष्ट्रीय हितों को देखते हुए आगे बढ़ने का सबसे अच्छा तरीका क्या है?

तो इसके साथ ही, मैं प्रोफेसर वारिकू से अनुरोध करता हूँ कि वे हमें किताब का संक्षिप्त विवरण दें। फिर मैं हमारे पैनल के सदस्यों से अनुरोध करूँगा कि वे भी अपने विचार व्यक्त करें। इस अवसर पर मुझे आमंत्रित करने के लिए मैं एक बार फिर आईसीडब्ल्यू को धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद।

के. वारिकू: धन्यवाद, सर। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, किताब की कल्पना असल में 1979 के आखिर में की गई थी और मुझे श्रीनगर में रहने वाले आखिरी उइगर शरणार्थी से मिलने का मौका मिला था। फिर मेरी मुलाकात कश्मीर पत्रकारिता, एक्सप्रेस टाइम्स आदि के वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित पत्रकार स्वर्गीय आर. के. काक से हुई। उन्होंने 1930 के दशक से लेकर अब तक की सभी घटनाओं, महत्वपूर्ण घटनाओं को कवर किया था। करीब एक दशक तक मेरी उनसे बातचीत होती रही। उन्होंने वास्तव में शिंजियांग से कश्मीर में उइगर और कज़ाख लोगों के पलायन को कवर किया था। उन्होंने शिंजियांग के प्रमुख नेता ईसा यूसुफ अलप्तकिन और मुहम्मद अमीन बुगरा का साक्षात्कार लिया था।

काक साहब ने मुझे बताया कि उन्होंने पहले ही भारत सरकार को सूचित कर दिया है और वे शाहिदुल्लाह के करीबी थे। वे शायद नेहरू से मिले थे। वे अक्साई राजमार्ग, अक्साई शिंजियांग राजमार्ग और अन्य विकल्पों के बारे में चीन की योजना के बारे में था। क्योंकि वे उइगर- शिंजियांग सरकार में बहुत महत्वपूर्ण पदों पर थे। फिर संयोग से मेरी एक बैठक महान कारवां चालक और कश्मीर एवं लद्दाख और तिब्बत के बीच का अर्ध-आधिकारिक मिशन चाय व्यापार मिशन जिसे अलापचक मिशन के नाम से जाना जाता है, के नेता अब्दुल वहीद रोधा से हुई।

उनकी राजनीतिक अंतर्दृष्टि बहुत अच्छी थी और वे बहुत ही प्रभावशाली, जानकारीपूर्ण और राजनीतिक बुद्धि वाले थे। उन्होंने मुझे शिंजियांग और उस क्षेत्र की स्थिति के बारे में बहुत अच्छी जानकारी दी। वास्तव में उन्होंने शायद, शायद नहीं, वास्तव में दलाई लामा की दुर्दशा और अन्य स्थितियों के दौरान अमेरिकियों की मदद की थी। इसलिए जब मुझे शिंजियांग और कश्मीर के बीच व्यापारिक गतिविधियों के बारे में पता चला तो होशियारपुरी व्यापारियों का एक समूह वास्तव में शिंजियांग में उस व्यापार का संचालन कर रहा था।

तो एक बिहारीलाल पराशर, तो मैंने उनसे संपर्क करने की कोशिश की। वे होशियारपुर के गगरेट से थे। तो 1983, 1984 में, मेरी उनसे कई मुलाकातें हुईं। इसलिए उन्होंने मुझे बताया, क्योंकि वे 14 साल तक यारकंद में रहे और व्यापारिक गतिविधियों को देखते रहे, वे वहां बड़े व्यापारिक घरानों की गतिविधियों को देखने वाले एजेंट थे। इसलिए उन्होंने मुझे वहां की स्थिति का विस्तृत ब्यौरा दिया और उन्होंने मुझे बताया कि 1950 में आने के बाद उन्होंने 90 पन्नों का एक दस्तावेज़ लिखा था और इसे भारतीय अधिकारियों, अधिकारियों शायद लेह में खुफिया एजेंसियों को दिया था।

जब मैंने अभिलेखागार, राष्ट्रीय अभिलेखागार की तलाश की, तो मुझे बिहारी लाल परिषद की रिपोर्ट मिली, लेकिन यह बंद थी। मैं इसे एक्सेस नहीं कर सका। लेकिन बिहारी लाल की रिपोर्ट, वह रिपोर्ट वहाँ थी। तो ये बुनियादी बातें हैं और मैं शिंजियांग की लगातार यात्रा करता रहा हूँ और मैं भाग्यशाली था कि मुझे जोउ शुकिंग से मदद मिली। वो किसी संस्थान के निदेशक थे और वे शिंजियांग के मामलों पर नज़र रख रहे थे। वास्तव में शिंजियांग के रहने वाले हूण थे लेकिन चीन बहुत चतुर है। उन्होंने इन हूणों, अधिकारों और शिक्षाविद् का इस्तेमाल किया या उइगर मामलों और शिंजियांग के मामलों में उनके अनुभव को देखते हुए उन्हें बीजिंग में अलग- अलग पदों पर नियुक्त किया है।

इस संस्थान ने एक बार मेरी मेज़बानी की, फिर उन्होंने शिंजियांग की मेरी दो दौरों एक बार दक्षिण शिंजियांग और दूसरी बार, 2011 में उत्तरी शिंजियांग, की व्यवस्था की। मैंने इन इलाकों का दौरा किया और मैं पहले भी

कई बार वहां गया था। यह किताब बहुत पहले आ जानी चाहिए थी लेकिन यह बहुत थका देने वाला काम था, जैसा कि आपने देखा है, किताब में 16 अध्याय हैं और मैंने द्विपक्षीय मुद्दों के बारे में जितना संभव हो सके उतना कवर करने की कोशिश की है। चाहे वह व्यापार हो, संस्कृति हो या कूटनीतिक संदर्भ, जैसा कि आपने खुद कहा- कश्मीर ने कश्मीरी मुस्लिम व्यापारियों के माध्यम से शिंजियांग में बहुत मजबूत राजनयिक उपस्थिति बनाए रखी। महाराजा उन्हें कुछ उपहार देते थे और वे अपना काम करते थे। वे अंग्रेजों को दूर रखते और अपनी रिपोर्ट भेजते थे। महाराजा ट्रांस- काराकोरम कुलीन वर्ग या शिंजियांग या कोकंद या बुखारा या दूसरे जगहों के अधिकारियों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में न आने पाएं, इस बात का अंग्रेज बहुत ख्याल रखते थे। लेकिन कश्मीर राज्य, कश्मीर दरबार की प्रतिष्ठा और दर्जा मध्य एशिया के कराकोरम में इतनी अधिक थी कि उनके आतिथ्य ने उन्हें फिर से उनके साथ होने को आकर्षित कर लिया। और फिर उन्होंने विचार- विमर्श किया।

इस कूटनीतिक चालबाज़ी की ये सारी छोटी- छोटी बारिकियां अंग्रेजों द्वारा की गई चालबाज़ी और षड्यंत्रों की हैं। आखिर में, जब मैंने गिलगित के इस पहलू को पढ़ा, जैसा कि आपने कहा- ऑपरेशन दत्ता खेल। मेज़र ब्राउन मुख्य किरदार रहे। वास्तव में, कनिंघम एनडब्ल्यूएफ का गवर्नर था। और फिर बेकर। बेकर नहीं, कोई और नाम था। बेकन। उन्होंने रोज़र बेकन को नियुक्त किया था। साल 1947 की शुरुआत में गिलगित में राजनीतिक एजेंट के रूप में इन्हें नियुक्त किया गया था। तब वे पाकिस्तान सरकार, मेज़र ब्राउन और जॉर्ज कनिंघम के बीच की मुख्य कड़ी थे। ब्रिटिश विदेश सचिव अर्नेस्ट बेवन ने 27 अक्टूबर 1948 को एक बैठक के दौरान अमेरिकी विदेश मंत्री जॉर्ज मार्शल से बात की। उन्होंने कहा, मैं उद्धृत करता हूँ, मुख्य मुद्दा यह था कि मध्य एशिया में जाने वाली मुख्य सड़क पर किसका नियंत्रण होगा। भारतीय प्रस्ताव इसे उनके हाथों में छोड़ देंगे। इसलिए अंग्रेजों के सामने मुख्य मुद्दा भारत को उस राजमार्ग से दूर रखना था।

अब, आपने चीन द्वारा वाखान पर कब्ज़ा करने की कोशिशों पर रिपोर्ट देखी होगी, चाहे वे सच्ची हों या झूठीं। लेकिन चीनियों ने उस गलियारे पर भी कुछ चौकियाँ बना ली हैं। साल 2011 या '12 में, मैं एक फील्ड स्टडी के लिए फिर से ताज़िकिस्तान गया था लेकिन मेरी दिलचस्पी बदख्शां, गोर्नो- बदख्शां क्षेत्र में जाने में थी।

मेरी दूरदर्शिता काम आई। मैंने योजना तो बनाई थी लेकिन मैं वहां नहीं गया। तब तक मैंने जॉर्ज कर्जन और दूसरों के नोट्स को पढ़ लिया था। इसलिए मैंने खड़ग और दूसरे स्थानों पर जाने की योजना बना ली। खड़ग यूनिवर्सिटी में स्थानीय प्रोफेसर वाल्डोस, मुझे देख कर बहुत खुश हुए। शायद उन्होंने मेरा काम और मेरा उत्साह एवं दिलचस्पी देखी थी। वे मुझे अपने साथ वाखान कॉरिडोर पर लंगर के आखिरी गांव या आखिरी आबाद गांव में ले गए। वह अंतिम गांव था।

जब उस महिला ने मुझे दिखाया कि ये भारत है। जब मैंने देखा तो हैरान रह गया लेकिन फिर मैंने खुद को संभाला और फिर देखा कि सिर्फ 10 या 15 किलोमीटर दूर, जिस हिस्से पर मैं खड़ा था और गिलगित के बीच का अंतर केवल 10 से 15 किलोमीटर का था। उस दिन की घटना ने मुझे झकझोर कर रख दिया। मेरे दिमाग में यह बात घूम रही थी कि कैसे, फिर मैंने तथ्य जुटाना शुरू किए। और मैंने पाया कि यही कारण था कि ब्रिटिशों की मंशा अनुमति नहीं देने की थी। अब इतिहास की विडंबना यह है कि नब्ज़ कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान के हाथों में है।

उन्होंने कराकोरम राजमार्ग बनाया है। उन्होंने इसे सीपीईसी में अपग्रेड किया है और मुझे आपको बताना चाहिए, आपके साथ साझा करना चाहिए कि लंदन अभिलेखागार से जो आंकड़े मुझे मिल हैं, जी हाँ, 1936 में, शिंजियांग और लद्दाख के बीच वार्षिक कारोबार, लद्दाख से होकर शिंजियांग के साथ भारतीय व्यापार 1936 में लेह-यारकंद के रास्ते 20 लाख (2 मिलियन) रुपयों का था। उसी वर्ष गिलगित और काशगर के बीच 1 लाख (0.1 मिलियन) रुपये का कारोबार हुआ था। यह 20 गुना कम है लेकिन हम ठंडे पड़ गए हैं। हमारा कारोबार रुक गया है। हम रणनीतिक अड़चनों के पिंजरे में हैं लेकिन गिलगित खुंजाब, ताशकुरगन, यारकंद और काशगर से बहुत अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। अब यह केवल काराकोरम नहीं है बल्कि इसे सीपीईसी के हिस्से के रूप में अपग्रेड कर दिया गया है।

और चीनी, जैसा कि आपने रसकम पर मेरे विशेष अध्याय में देखा होगा, गिलगित में चीन की दिलचस्पी नई नहीं है। यह बहुत पुरानी है, यह 18वीं शताब्दी से शुरू होती है। जब गिलगित में ब्रिटिश एजेंट ने गिलगित प्रमुख मोहम्मद को पदासीन करवाया था, मैं पूरा नाम भूल रहा हूँ। शिंजियांग में चीन की सरकार ने सुनिश्चित किया था कि उनके दो वरिष्ठ प्रतिनिधि उस समारोह, स्थापना समारोह में गिलगित में मौजूद रहें। वे गिलगित के नए निज़ाम को कोई दस्तावेज़ या कोई फ़रमान देना चाहते थे। लेकिन अंग्रेजों ने कहा, नहीं, आप यहां एक सम्मानित अतिथि के रूप में बैठें। वे 1899, '91 में थे, या ऐसे ही किसी वर्ष में। रसकाम के विस्तृत अध्याय में, हम रसकाम, तगदुंबश और दूसरों में 3,000 या 5,000 किलोमीटर के इस क्षेत्र, ट्रांस- काराकोरम क्षेत्र पर अपने अधिकार के बारे में बात करते हैं। मैंने हुंजा स्रोतों एवं ब्रिटिश अभिलेखीय स्रोतों के आधार पर सभी मूल दस्तावेज़ एकत्र कर लिए हैं कि किसी प्रकार रसकाम भूमि और तगदुंबश एवं अन्य हुंजा राज्य का हिस्सा थे।

तो यह पहली बार है। और जहाँ तक शाहिदुल्लाह का सवाल है, मैंने एक अलग अध्याय लिखा है। शाहिदुल्लाह ठीक था, यह कराकोरम दर्रे से लगभग 80 किलोमीटर दूर है। यह देखा गया कि यह रणनीतिक स्थिति में है क्योंकि यहाँ से आप तीन दिशाओं से होने वाली आवाजाही पर नज़र रख सकते हैं, यारकंद से, दूसरी तरफ से, हुंजा की तरफ से, गिलगित और दूसरी तरफ से। महाराजा उस चौकी पर नज़र रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कुछ सैनिकों के साथ वहाँ एक चौकी बनाई थी। बहुत दूर होने और शायद सर्दियों के कारण उन सैनिकों को वापस बुला लिया गया था।

लेकिन अंग्रेजों ने यह सुनिश्चित किया कि यह क्षेत्र चीन के कब्ज़े में रहे। उन्होंने वस्तुतः शिंजियांग में चीनी सरकार को भौतिक रूप से प्रेरित किया। यंगहसबैंड वहाँ चले गए। फिर दूसरे भी गए, कृपया इसे संभालें अन्यथा रूसी आ जाएंगे। रूसी आ जाएंगे। और ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रूसी अधिकारी ग्रम्बचेव्स्की भी उस क्षेत्र में आया था। वह हुंजा आया था।

इस क्षेत्र में बहुत सारे खेल खेले जा रहे थे। लेकिन अंतिम परिणाम यह है कि एक स्वतंत्र भारत के रूप में, स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप में, मुझे बहुत बुरा लगता है कि हमने किस तरह अप्रत्यक्ष रूप से गिलगित को खो दिया। भले ही स्थिति बिगड़ रही थी, लेकिन उस मोर्चे पर यह और भी खराब हो रही थी। साल 1999 में, जब कारगिल का युद्ध हुआ, कारगिल युद्ध के बाद मुझे सड़क मार्ग से कारगिल, द्रास और लेह जाने का मौका मिला। कोई टीम जा रही थी और उन्होंने मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा था। हम कारगिल में रुके। कारगिल के एक स्थानीय मुस्लिम बुजुर्ग को इस बात का बहुत दुख था कि हमने स्कार्दू को खो दिया। वे बहुत दुखी थे और उन्होंने कहा कि भारत ने उस समय कोई कार्रवाई क्यों नहीं की? उनकी यादें इतनी कड़वी थीं कि उन्होंने कहा कि अगर भारत सरकार ने स्कार्दू को वापस लेने या इसे बचाने में कोई दिलचस्पी दिखाई होती तो आज स्कार्दू भारत का हिस्सा होता।

लेकिन सच तो यह है कि शायद इसी वजह से इन सभी मुद्दों पर मुझे कई साल लग गए। मुझे लगता है कि अब 40 साल हो गए हैं। 40 से भी ज्यादा। लेकिन यह इससे बेहतर नहीं हो सकता था। इसके लिए एक लंबी गणना, चिंतन और विभिन्न प्रकार की पैंतरेबाज़ियों, चालबाज़ियों एवं स्रोतों के आकलन की जरूरत थी। तो इस तरह से ये किताब आप सबके सामने आ पाई। धन्यवाद, महोदय।

टी.सी.ए. राघवन: प्रोफेसर वारिकू, आपका बहुत- बहुत धन्यवाद। स्कार्दू के बारे में आपने जो कहा वह दिलचस्प है क्योंकि यह एक चिरस्थायी बहस है। यह शिमला समझौते के बारे में बहस के जैसा है। ऐसा माना जाता है कि युद्ध के मैदान में हमने जो हासिल किया, वह बातचीत की मेज पर खो गया। इसी तरह, एक विचार यह भी है कि अगर 1948 में भारतीय सेना को काम पूरा करने दिया जाता तो वे पूरा पीओके वापस ले सकते थे। लेकिन जब आप वास्तव में ऐतिहासिक रिकॉर्ड देखते हैं, तो यह इतना स्पष्ट नहीं लगता है।

जनरल सिन्हा, जिन्होंने स्कार्दू में अपनी भूमिका और संभावित अभियानों के बारे में लिखा है, वे इस बारे में बहुत अनिश्चित हैं। कोई स्पष्ट सैन्य परिणाम नहीं था जिसकी भविष्यवाणी की जा सकती थी। इसलिए वे

सरकार को यह स्पष्ट अनुशंसा नहीं दे पाए कि यह सैन्य दृष्टि से संभव था या परिचालन की दृष्टि से इसमें निवेश करना सार्थक था। इसलिए जब आप ऐतिहासिक अभिलेखों के विवरण में जाते हैं तो यह बहुत अधिक जटिल प्रश्न है। लेकिन आपका सामान्य बिंदु एक वैध बिंदु है कि साम्राज्यवादी खेल चल रहे थे। उस समय, 1947-'48 के सभी भ्रम के बीच, उन सभी का पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं था। निश्चित रूप से, कुछ सीमा तक, परिणामों को नियंत्रित करना मुश्किल था।

दूसरी बड़ी विडंबना, बेशक, वर्तमान ख़ैबर पख़्तूनख्वा का पूरा इलाका है। वहां कभी मुस्लिम लीग की सरकार नहीं रही। इसे कांग्रेस चलाती थी और कांग्रेस पार्टी ने सभी चुनावों में अच्छा प्रदर्शन किया था। यह भी उन्हीं विडंबनाओं में से एक है। राघवन सिंह की एक किताब है जिसमें इसी तरह का दुख व्यक्त किया गया है। किताब का शीर्षक है *द लास्ट फ्रंटियर*। अब मैं श्री रानाडे से अनुरोध करूँगा कि वे इस किताब के अन्य पहलुओं पर और इससे उठने वाले प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त करें। धन्यवाद।

जयदेव रानाडे: राजदूत राघवन, आपका धन्यवाद और आज मुझे आमंत्रित करने के लिए आईसीडब्ल्यूए और अन्य लोगों का धन्यवाद। सबसे पहले, मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस किताब की दो बातें मुझे प्रभावित करती हैं। पहला यह है कि जितनी अधिक चीजें बदलती हैं उतनी ही वे एक जैसी रहती है। महान खेल इसका एक उदाहरण है। यह अभी भी जारी है। 1800 के दशक से लेकर आज तक विभिन्न रूपों में शायद नाटक के पात्र बदल गए हैं लेकिन उद्देश्य और जिस तरह से इसे खेला जा रहा है वह वही है।

दूसरा, निश्चित रूप से अंग्रेजों का व्यवहार या उनकी कार्रवाइयां जो अक्सर, जैसा कि आपने बताया, मेरे कहने का मतलब है कि आपने इसे विशेष रूप से तो नहीं बताया लेकिन आपने इसका संकेत दिया है या आपने इसकी ओर इशारा किया है कि अंग्रेजों की कार्रवाइयां कई बार ब्रिटिश भारत के हितों से मुक्त थीं। यह वही था जो आप कह सकते हैं कि इंग्लैंड या ब्रिटेन चाहता था और उनका वाणिज्यिक हित सर्वोच्च था। ज़ाहिर है, यह कुछ ऐसा है जो आज भी जारी है, जहाँ वे वही काम कर रहे हैं और चीन भी वहाँ मौजूद है। लेकिन चीन

खुद अक्सर सक्रिए खिलाड़ी नहीं रहा है। वो निष्क्रिय था, वो मौजूद था और उन्हें या तो इसमें खींचा गया या उनका इस्तेमाल किया गया।

लेकिन मैं किताब के बारे में बात करना चाहता हूँ और मैं कहूँगा कि जब मैंने इसे पढ़ना शुरू किया और मैं इसे व्यापक दर्शकों से कहना चाहता हूँ तो पहले कुछ पन्ने, यह एक इतिहास की किताब की तरह था। यह मुझे यह बताने जैसा था कि क्या हुआ था, जब तक कि आप थोड़ा और गहराई में न जाएं। मेरे कहने का मतलब है, एक बार जब आप अध्याय एक से आगे बढ़ते हैं तो आप देखना शुरू कर देते हैं कि वास्तव में क्या बताया जा रहा है, वहाँ क्या हो रहा है और मुख्य कर्ता कैसे हैं, उनकी रुचियां क्या हैं और वे इसे किस तरह से निभाने की कोशिश कर रहे हैं।

और यहाँ मै पाता हूँ, जैसे, अगर मैं सिर्फ़ इस बात का उल्लेख करूँ, हुंजा पर दावे और शाहिदुल्लाह पर कश्मीर के दावे, इन्हें बलिदान कर दिया गया, हालांकि वे बहुत हद तक, अगर मैं इसे हिंदू शासन या कश्मीर के राजाओं का शासन कह सकता हूँ, के अधीन थे लेकिन उन्हें अनदेखा कर दिया गया। और वास्तव में, डोगराओं को आगे बढ़ने एवं इसे लेने से रोका गया था, मेरे विचार से इसके दो कारण थे। एक, ब्रिटिश हित यह था कि वे चाहते थे कि उनका व्यापार जारी रहे और मध्य एशिया आदि में उनका मार्ग बना रहे। लेकिन दूसरा यह भी था, मुझे लगता है, वे चीनियों को नाराज़ नहीं करना चाहते थे। और यह बात सामने आती है, हाँ, यह बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती है।

कभी- कभी, बेशक, कुछ छोटी- मोटी दिलचस्पियां भी होती थीं, जैसे कि वे काशगर में अपने वाणिज्य दूतावास को बेहतर करना चाहते थे आदि। लेकिन मुख्य रूप से, मुझे लगता है कि वे चीनियों को नाराज़ नहीं करना चाहते थे। इसका कारण दूर- दूर तक नहीं देखा जा सकता। मुझे लगता है कि यह अफ़ीम का व्यापार था जिससे उन्हें बहुत सारा पैसा मिला। यहाँ फिर से मैं चरस के व्यापार में समानता पाता हूँ जो पूरे साल चलता रहा और ध्यान रहे, मुझे लगता है, ऐचिन्सन ने लिखा है कि यह सिखों की मानसिक क्षमताओं को कैसे परेशान

कर रहा है, चरस का पंजाब में आना, हाँ, कश्मीर से पंजाब में आना। लेकिन उन्होंने अफ़ीम का व्यापार जारी रखा और उन्होंने उस उद्देश्य के लिए अन्य चीजों का त्याग किया।

इसलिए मुझे लगता है कि यह बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती है। कई साल पहले जब मैं लेह में था, 1970 के दशक में, जब वह अनगढ़ था, लेकिन मुझे बहुत से पुराने लद्दाखी परिवारों से मिलने का मौका मिला, मुख्य रूप से मुस्लिम, वास्तव में, खुद कालोन, जिन्हें दक्षिण सिल्क रूट से व्यापार लाभ हुआ और वे इस ये सब कैसे हुआ, वे कैसे गए, क्या हुआ इस बारे में कहानियाँ सुनाते थे। मुझे याद है कि उस समय भी उन्होंने कहा था कि उन इलाकों में चीनी लोगों की मौजूदगी बहुत ज्यादा नहीं थी। मुख्य रूप से तिब्बती और ये लोग ही सीमा पार करते थे, जब तक कि वे उइगर व्यापारियों या शिंजियांग के लोगों तक नहीं पहुँच जाते थे, जो उनके साथ व्यापार करने आते थे।

तो यह एक दिलचस्प बात थी। चीनियों के लिए रियायतों की यह नीति और चीनियों को नाराज़ न करना, जैसा कि मैंने बताया, यह व्यापार आदि के कारण ही था। लेकिन ऐसा करना जारी रहा। यहाँ तक कि 2020 के अंत में या हाल ही में, उन्होंने तिब्बतियों के साथ संधि की भाषा बदल दी। तिब्बत पर चीन का आधिपत्य कहने की बजाय, जैसा कि उन्होंने कहा था, उन्होंने इसे तिब्बत पर चीन की संप्रभुता में बदल दिया। मुझे याद है कि उस समय मैंने एक ब्रिटिश राजनयिक से पूछा था कि यह बदलाव क्यों हुआ, क्योंकि यह एक बड़ा बदलाव है। और उसने मेरी तरफ देखा और बहुत ही मासूमियत से कहा, क्यों, क्या अंतर है? आधिपत्य और संप्रभुता का मतलब एक ही बात है। तो, मेरा मतलब है, यही वह तरीका है जिससे वे इसे प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे थे।

लेकिन आज, फिर से, हम देखते हैं, बीते कुछ महीनों में, चीन के प्रति सख्त रवैये से ब्रिटिश नीति में स्पष्ट रूप से उलटफेर हुआ है, और यूरोपीय एवं अमेरिकियों के साथ मिलकर कीर स्टारमर अब पूरी तरह से चीन से दोस्ती करने एवं आर्थिक लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए मुझे नहीं पता कि यह कहाँ तक

जाएगा, लेकिन उनकी नीति स्पष्ट रूप से उस बिंदु पर पहुँचने की है, जिसे आप दोनों ने अभी कहा है, अर्थशास्त्र और व्यापार स्पष्ट रूप से उनके काम के केंद्र में हैं। और जहां तक भारत का सवाल है, ब्रिटिश नीति हमेशा से या कम- से- कम लंबे समय से, एक पूर्वाग्रह, एक नकारात्मक पूर्वाग्रह रही है।

किसी तरह यह बात मुझे यहाँ भी आती है जब हम ऑपरेशन दत्ता खेल की बात करते हैं और जैसा कि आपने सही कहा, यह एक ऐसा व्यक्ति था जिसने फैसला किया कि वह पद छोड़ देगा और मर जाएगा लेकिन गिलगित को पाकिस्तान में मिला देगा। मेरा मतलब है, मैं कहूँगा कि उसके प्रयास में उस जुनून का कारण क्या था, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। लेकिन निश्चित रूप से, फिर से, वह पूरा क्षेत्र रणनीतिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण है, गिलगित आदि। उसके द्वारा उस कार्रवाई को करने से, मुझे लगता है कि इसने कई चीजों को गति दी, जिसमें ऑपरेशन गुलमर्ग भी शामिल है, जिसे अंग्रेजों ने 1947 में आज़माया था और उन्होंने उन हमलावरों को ब्रिटिश अधिकारियों के अधीन भेजा था। वे बारामूला और ऐसी ही जगहों तक आए फिर उन्हें वापस खदेड़ दिया गया।

लेकिन एक बात मैं आपसे सहमत हूँ, आपने एक अध्याय के अंत में एक लंबे पैराग्राफ में इसका उल्लेख किया है, आपने सवाल पूछा है कि हमने वास्तव में सख्त रवैया अपनाते हुए बातचीत क्यों नहीं की? हमने गरटोक और उन सभी जगहों के संबंध में कोई रुख क्यों नहीं अपनाया? यह ऐसी बात है जिस पर हममें से कई लोग आश्चर्य करते हैं। मेरे कहने का मतलब है, हाँ, काशगर, जी हाँ। हममें से कई लोग आश्चर्य करते हैं, चाहे वह ल्हासा हो या ये जगहें, हमने बातचीत के लिए कोई सख्त रवैया नहीं अपनाया। हाँ उन्होंने पूछा, हमने दिया। एक जगह, बेशक, हमारे पास कोई सुरक्षात्मक तत्व नहीं था लेकिन ल्हासा में, हमारे पास था। वहाँ कोई चर्चा भी नहीं हुई।

अब, जब हम उन लोगों से इस बारे में चर्चा करते हैं, जिनके पास शायद यादें हैं या जो उस समय कहीं काम कर रहे थे या पत्राचार देखा था, क्योंकि इसका ज्यादातर हिस्सा रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है, तो उनका कहना

था कि भारत उतना मज़बूत नहीं था। लेकिन मैं अक्सर सोचता हूँ कि चीन और भारत, हम लगभग एक ही समय में स्वतंत्र हुए और हमारी सेनाएं भी प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध का हिस्सा थीं। उनमें से लाखों वापस आए। इसलिए वे युद्ध-कौशल में निपुण थे। वे युद्ध- परीक्षित थे। चीनी, निस्संदेह गुरिल्ला युद्ध लड़कर आए थे।

तो क्या इसका मतलब वाकई असमानों के बीच इतनी प्रतिस्पर्धा होगी? मुझे नहीं पता। मुझे लगता है कि कम- से- कम हम एक सख्त रवैया अपना सकते थे। लेकिन मुझे लगता है कि दुर्भाग्य से आज भी हमारे भीतर एक प्रकार की प्रवृत्ति है, मैं नहीं कहूँगा कि हम झुक जाते हैं लेकिन कम- के- कम हम चीनियों की बातों के प्रति बहुत संवेदनशील हैं। और वही क्षेत्र जिसके बारे में आप बात कर रहे हैं- गिलगित, हुंजा, शक्सगाम, तगदुंबश और रसकम, आज वे बहुत महत्वपूर्ण है। और शाहिदुल्लाह, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। आज के समय में चर्चा करने वाली बातों में एक है डेपसांग मैदानों पर चीनियों के साथ हमारी चर्चा या बातचीत। यह उस क्षेत्र के बिल्कुल साथ में है। यह उस बड़े क्षेत्र का हिस्सा है। और वास्तव में, हम देखते हैं कि चीन वहां अपनी पकड़ मजबूत कर रहा है। उन्होंने अभी ताशकुरगन में एक नया हवाईअड्डा बनाया है। वे यारकंद और कुछ दूसरी जगहों पर हवाई अड्डे बना रहे हैं। वे पैंगोंग में अपनी स्थिति मजबूत कर रहे हैं।

तो ये सभी एक ही क्षेत्र में हैं और शाहिदुल्लाह एक और है। उन्होंने वहां एक नया हवाई अड्डा बनाया है। यह लगभग पूरा हो चुका है। ये बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। वे वस्तुतः कराकोरम के मुहाने पर हैं और जहां से सीपीईसी गुज़र रहा है। इसलिए हमारे लिए मेरे ख्याल से, यह एक तरह से, मैं कहूँ तो चीन इस क्षेत्र में अपनी स्थिति और पकड़ को मजबूत कर रहा है। यह उस मार्ग के जरिए मध्य एशियाई गणराज्यों के साथ अपने संबंधों को भी मज़बूत कर रहा है। यही कारण है कि वे शिंजियांग में बहुत सारे सैन्य अवसंरचनाओं को मजबूत कर रहे हैं। वे मध्य एशिया तक पहुँचने के लिए शिंजियांग में परिवहन मार्गों में सुधार कर रहे हैं। लेकिन साथ ही वे पाकिस्तान पर अपनी पकड़ मजबूत करने की प्रक्रिया में भी हैं।

और मुझे लगता है कि पाकिस्तान ने उन सभी क्षेत्रों, हज़ारों वर्ग मील को छोड़ दिया है, और बदले में कुछ भी नहीं लिया है, भविष्य में यह एक समस्या बनने वाली है। जहाँ तक शिंजियांग का सवाल है, यह और भी अधिक होता जा रहा है- मुझे लगता है कि उइगरों के लिए स्वायत्तता प्राप्त करने का प्रयास करना और भी अधिक कठिन होता जा रहा है। चीनियों ने वहां हर तरह के हथकंडे आज़मा लिए हैं, नरम रुख, सख्त रवैया। और अब हम वहाँ काफी सख्त रवैया देख रहे हैं। एड्रियन जेनज़ ने इस बारे में विस्तार से लिखा है और बताया है कि वहाँ क्या हो रहा है।

आखिर में, मैं बस इतना कहना चाहता हूँ कि आपने पश्चिमी थिएटर कमांड पर बात की। मुझे लगता है कि हमारे लिए, मैं दो बातें कहना चाहूँगा। एक, मुझे लगता है कि अनुच्छेद 370 को हटाना एक अच्छा कदम था। इससे पता चला कि कम- से- कम अब हम यह निर्णय ले रहे हैं कि कश्मीर के मामलों में किसी और की कोई भूमिका नहीं है। लेकिन हमें और आगे बढ़ना है। मुझे लगता है कि पश्चिमी थिएटर कमांड के साथ, चीन ने वास्तव में इस बात पर सीमाएं लगा दी हैं कि क्या किया जा सकता है और क्या नहीं किया जा सकता और हम क्या कर सकते हैं। मैं सिर्फ यह उद्घृत करना चाहता हूँ कि पश्चिमी थिएटर कमांड के लिए उनके आधिकारिक आदेश में क्या कहा गया था, यह फरवरी 2016 में दिया गया था।

जब उन्होंने कहा कि इसके कार्यों में शिंजियांग और तिब्बत के साथ- साथ अफ़गानिस्तान और अन्य राज्यों के लिए खतरों का मुकाबला करना शामिल होगा, जो अलगाववादियों एवं चरमपंथियों के लिए प्रशिक्षण अड्डे रखते हैं। यह चीन में सबसे बड़े थिएटर कमांड के लिए एक बहुत व्यापक जनादेश है, जिसमें एक तिहाई भूमि सेनाएं हैं और जो निश्चित रूप से हमारे ठीक सामने है। फिर, वास्तव में पश्चिमी थिएटर कमांड जो करता है वह यह है कि यदि हम इसमें पाकिस्तान को शामिल कर लें तो चीन की सैन्य शक्ति को हमारी उत्तरी सीमा से पश्चिम तक विस्तारित कर देता है, जैसा कि मैं करना चाहता हूँ।

मुझे लगता है कि आज पाकिस्तान की सैन्य क्षमता चीनी सैन्य क्षमता से जुड़ी हुई है या उसमें समाहित है। और फिर, जब आप शाहिदुल्लाह और सभी मामलों में अपनी किताब में जो कहते हैं, तो ठीक वैसा ही होता है। मुझे लगता है कि यह वह समय है जो हमें भविष्य में देखना होगा। व्यापार वायु के बारे में बताया गया है कि हम क्या करने जा रहे हैं। मुझे लगता है कि पहली बाधा जो हमें पार करनी है, वह है मध्य एशिया में हमारे सीधे मार्गों की रुकावट। और मुझे लगता है कि इसीलिए हम चाबहार और इस तरह की चीजों के माध्यम से वैकल्पिक मार्ग की तलाश कर रहे हैं। यह कारगर होता है या नहीं, मुझे नहीं पता। लेकिन निश्चित रूप से जिस तरह से मैं इसे चीन और पाकिस्तान के साथ मिलकर काम करते हुए देखता हूँ, हमारे लिए उस मार्ग को खोलना मुश्किल हो जाएगा। हमें कुछ और करना होगा।

दूसरा, यह चीनी और पाकिस्तानी लोगों के लिए हमारे खिलाफ दबाव बनाने का एक रास्ता भी खोल देता है, अगर वे दबाव डालना चाहते हैं। यहाँ कश्मीर वास्तव में थोड़ा कमज़ोर हो जाता है। इसके पास रास्ते हैं, प्रवेश मार्ग हैं और यह उस सीमा तक खुला है। मैं बस ये बातें कहूँगा। लेकिन मुझे लगता है कि यह किताब निश्चित रूप से कई बातें सामने लाती हैं। आपने यह भी बताया है कि पांचवीं और छठी शताब्दी में हिंदू शासक ही वास्तव में इस सभी क्षेत्रों पर नियंत्रण रखते थे जो कम- से- कम चीनियों के लिए एक अच्छी बात है, जो पुराने नक्शे निकालते रहते हैं और दिखाते हैं कि वे कहाँ थे।

इसका मुकाबला करने के लिए अच्छी सामग्री है। लेकिन मुझे लगता है कि यह किताब निश्चित रूप से कुछ ऐसी है, जो न केवल मध्य एशिया के छात्रों के लिए बल्कि पाकिस्तान और चीन के छात्रों के लिए भी पढ़ने लायक है। जैसा कि आपने कहा, यह एक अनूठा नज़रिया है। मुझे लगता है कि यह कुछ ऐसा है जो पढ़ने लायक है। मैं इसके लिए आपका धन्यवाद करता हूँ। बहुत- बहुत धन्यवाद।

टी.सी.ए. राघवन: धन्यवाद। बहुत- बहुत धन्यवाद। अब मैं प्रोफेसर बेहुरिया से अनुरोध करूँगा कि वे अपना योगदान दें।

अशोक के. बेहुरिया: धन्यवाद सर। इस अद्भुत किताब के लिए मैं प्रोफेसर वारिकू को बधाई देता हूँ। वास्तव में, एक चर्चाकार के रूप में, मैं हमेशा अपने लिए अपनी भूमिका निर्धारित करता हूँ। मैं हमेशा सोचता हूँ, मैं कहाँ पर कमियां निकाल सकता हूँ? मैं लेखक पर कटाक्ष भी करूँगा। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि इस तरह की किताब, जिसका दायरा इतना व्यापक है और जो हमारे लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र पर केंद्रित है, में उन कमियों को निकालना मेरे लिए बहुत मुश्किल था। मैं यह कहना चाहूँगा कि जब मैं यह किताब पढ़ रहा था क्योंकि मैं उत्तरी सीमा पर स्थित देशों, चीन, पाकिस्तान और साम्राज्यवादी षड्यंत्रों को देख रहा था, इसलिए कहूँ तो इसे एक विशेष रूप से आकार देने और बहुत सी बातों को अनिर्धारित, अपरिभाषित छोड़ने के लिए। वास्तव में, यही वह कारण है जो आज हमारे सामने वर्तमान संकट की वजह है, चीन, पाकिस्तान और हमारे आस- पास के सभी लोगों के साथ।

इसलिए हमारे पास जो औपनिवेशिक विरासत है, वह वास्तव में हमारे लिए समस्याएं पैदा कर रही है। और जब मैं किताब पढ़ रहा था, तो यह मुख्य इतिहास से अलग नहीं है। इतिहास यह है कि अंग्रेजों ने हमें इस जगह छोड़ दिया जहाँ हम आज हैं। ऐसा उनके अपने कारणों, उनकी अपनी चालों के कारण हुआ। हालांकि यह प्रमुख कथा से अलग नहीं है लेकिन यह इसे बहुत सारे तथ्यों एवं विवरणों से भर देता है, जो वास्तव में आपको यह सोचने के लिए विवश करता है कि, ठीक है, यह वास्तव में ऐसा था। हम इसे दो तरीकों से देख सकते हैं।

अगर इस तरह की कोई किताब आपको आपके सबसे अच्छे पूर्वाग्रहों पर आश्वस्त करती है तो आप वहां से आगे कैसे बढ़ पाएंगे? क्या ऐसा हो सकता है कि आप अपने अतीत को दफ़ना देंगे और आगे बढ़ जाएंगे? अगर प्रोफेसर वारिकू ने कहा है कि कश्मीर का मामला सरल मामला है, तो क्या हमें चीनियों के साथ वार्ता करने का प्रयास करना चाहिए, और उन्हें यह किताब दिखानी चाहिए और कहना चाहिए कि इसमें दिए प्रमाणों को देखो। यह इस तरह से था। क्या हमें आगे बढ़कर इसे फिर से नहीं करना चाहिए? यह दिलचस्प है, जैसा

70 के बाद का चीन 70 से पहले का चीन नहीं है और 1949 से पहले का चीन एक अलग ही देश था। जब हमसे इसे बंद करने या रद्द करने के लिए कहा गया, तो चीन अलग था। शायद वे नहीं चाहते थे कि हमारे साथ इस तरह के संबंध फिर से हों। लोगों ने नेहरू पर कटाक्ष किया है, लोगों ने उनके शासन पर ठीक से सौदेबाज़ी न करने के लिए कटाक्ष किया है।

लेकिन मैं कहूंगा कि हाथ भरे हुए थे, बहुत सारे मुद्दे थे। चीनी स्वागत नहीं कर रहे थे। इसलिए बहुत सारे मुद्दे थे। इसलिए किसी व्यक्ति विशेष या किसी विशेष प्रशासन पर दोष मढ़ने के बजाय क्योंकि यह आज बहुत फैशनेबल है, हमें उससे परे देखना चाहिए, जैसे कि हम वास्तव में क्या कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, इस किताब में जानकारी का ख़जाना है। लोग कहते हैं कि सभी मध्य एशियाई देश, मध्य एशियाई देशों के लोग हज जाने के लिए लेक यारकंद मार्ग का उपयोग करते थे। उस तरह का मार्ग था। और जब यह संजू दर्रे से शाहिदुल्ला से सुगेथ तक आया, फिर चांग चेनमो घाटी से होते हुए पूर्व की ओर लेह तक गया, दूसरा नुबरा से लेह तक था। नुबरा से काशगर तक सीधी रेखा में यह लगभग 340 किलोमीटर होगा।

अगर आप इसे गूगल करते हैं, अगर आप कहते हैं कि मुझे नुबरा से काशगर ले चलो, तो यह आपको 11,996 किलोमीटर का सफ़र दिखाता है। यह भारत के पूरे क्षेत्र से होकर दक्षिण- पूर्व एशिया तक जाता है और वापस आकर वहाँ मिलता है। तो यह एक शून्य है। यह उस शून्य के बारे में बात कर रहा है। ऐसा क्यों है और यह कैसे हो सकता है शायद उन्होंने इस बारे में बात नहीं की है। इतिहास के साथ समस्या यह है कि लोग कहते हैं अगर आप इतिहास नहीं जानते हैं तो आप इसे दोहराने के लिए अभिशप्त हैं। मैं यह भी कहूँगा कि अगर आप इसके बारे में बहुत कुछ जानते हैं तो आप यादों की पीड़ा से भी पीड़ित होते हैं।

इसलिए जब मैंने यह किताब पढ़ी तो मुझे बहुत तकलीफ हुई। जैसा कि क्या संभव हो सकता था और क्या संभव नहीं था। उदाहरण के लिए, इतिहास के बारे में बहुत सारे अगर- मगर हैं। हुंजा को देखें। हुंजा अध्याय बहुत अच्छा है। फिर से, यह बहुत सारे अंतरालों को भरता है। और उन्होंने इसे कई स्रोतों से लिया है। इस

विषय पर इतना समय देने के लिए मुझे आपका धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि केवल वे ही ऐसा कर सकते थे। मेरी पीढ़ी आखिरी थी, मुझे लगता है, मोहिकन में से आखिरी, जैसा कि वे कहते हैं, जो धैर्यपूर्वक अभिलेखागार को देख सकते थे और उन विवरणों को चुन सकते थे। यही मैं कह रहा हूँ। आज, लोग कॉपी-पेस्ट करते हैं और भूल जाते हैं। लेकिन वे राष्ट्रीय अभिलेखागार, कश्मीर अभिलेखागार, इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में गए और बहुत मेहनत की।

मुझे लगता है कि सर आपको यह सब हमारे सामने एक साथ लाने के लिए पूरे अंक मिलने चाहिए। मैं इस किताब को एक समग्र किताब कहूँगा, वास्तव में, आपने जेएन राव और करुणाकर गुप्ता और फिर पुरुषोत्तम मेहरा को पढ़ा होगा। उन्होंने इन तथ्यों को एक साथ रखने में भी सराहनीय काम किया है। बहुत सारी कमियां थीं और यह पुस्तक उन कमियों को दूर करती है। इसलिए यह उस तरह से महत्वपूर्ण और ठोस काम के अनुरूप है जो इन मुद्दों पर किया गया है।

हुंजा अध्याय की बात करें, जो पूरी किताब में सबसे दिलचस्प है, उस तथाकथित, उद्धरण- अनउद्धरण, ग्रेट गेम फोल्ड में औपनिवेशिक नीति कैसे विकसित हुई, इस पर गौर करें। अगर ग्रेट गेम नहीं होता, तो क्या अंग्रेजों का व्यवहार अलग होता? हमें खुद से पूछना होगा। आप देखिए, 1865 में अचानक जॉनसन, जो सर्वेयर ऑफ इंडिया ऑफिस में थे, उन्होंने एक रेखा बनाई। जॉनसन लाइन, 1865 और 1865 में, काशगर की सत्ता किसके हाथ में थी? याकूब बेग की। याकूब बेग ने 1865 में पदभार ग्रहण किया था और अचानक पूरा ब्रिटिश प्रशासन उसे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखने लगता है जो काम कर सकता है। याकूब बेग भी अंग्रेजों के पास अपने दूत भेजता है।

और दोनों के बीच एक दिलचस्प रिश्ता पनप रहा है। और यही वह समय है जब ब्रिटिश अपने दावों को पुख्ता कर रहे हैं। 65 अधिकतमवादी रेखा है। हम भी इस पर सहमत हैं। हम इसे पूरी तरह से स्वीकार करते हैं। इसमें सिर्फ शक्सगाम ही नहीं रकसम भी शामिल है। करकस घाटी, जहां शाहिदुल्लाह है। पूरा बात, हम स्वीकार

करते हैं लेकिन देखिए यह कैसे असफल हो जाती है। जब यह जॉनसन- अर्दाघ रेखा बन जाती है, अर्दाघ यूनाइटेड किंग्डम में सैन्य खुफिया विशेषज्ञ होते हैं। जब यह अर्दाघ रेखा बन जाती है, 1899 में। तब तक याकूब की हत्या की जा चुकी थी। '77 में याकूब की मौत हो चुकी थी। वह 12 वर्षों तक वहाँ रहा। फिर चला गया। फिर चीन के लोग आ गए। चिंग राजवंश ने पहले ही अपना दबदवा कायम करना शुरू कर दिया था और 1899 में जॉनसन- अर्दाघ लाइन शाहिदुल्लाह के आसपास थोड़ी नीचे आ गई।

और फिर 1902 या 1903 में, आपके पास दूसरा है, मैककार्टनी- मैकडोनाल्ड लाइन। मैककार्टनी काशगर में था और मैकडोनाल्ड पेकिंग में था। इसलिए वे एक साथ एक रेखा लेकर आए जो कराकोरम के आसपास कुनलुन से नीचे है। इसलिए ब्रिटिश लगातार उस रेखा को संशोधित करने की कोशिश कर रहे थे और 1911, 1912 में वे एक और नक्शा लेकर आए जिसमें पूरा उत्तरी किनारा अपरिभाषित क्षेत्र है। इसलिए उन्होंने बाकी भारतीयों के मन में यह भ्रम पैदा कर दिया। बेशक, भारतीय अपनी आज़ादी की लड़ाई में इतने व्यस्त थे कि नक्शा देखने और यह दावा करने का समय ही नहीं था कि यह हमारी बाहरी सीमा है। मुझे नहीं लगता कि उस समय कोई भगवा ब्रिगेड भी नहीं थी जो इसे शिंजियांग तक बढ़ा सकती थी। तो उस समय ऐसा ही था।

इसलिए अगर आप इसे देखें, तो हम इतने व्यस्त हैं कि हम इसे निष्पक्ष रूप से नहीं देख पा रहे हैं। तो जब नेहरू आए, तो क्या हुआ, वे भी थोड़ा भ्रमित हो गए कि क्या करें। एक स्तर पर, वे एक राष्ट्रवादी, उत्साही राष्ट्रवादी हैं। वास्तव में, डिस्कवरी ऑफ इंडिया में, उन्होंने ऐसे अध्याय लिखे हैं जो भगवावादियों को भी शर्मिंदा कर देते हैं, जिस तरह से वे भारत, भारतीयों, राष्ट्रवाद के लिए प्रशंसा करते हैं और वे एक राष्ट्रवादी भी थे। बेशक, उन्होंने कहीं कहा था कि घास का एक तिनका भी नहीं उगता। लेकिन वे अपने तरीके से सीमा की रक्षा करने की कोशिश भी कर रहे थे, उस अनिर्धारित सीमा की। आज हम उसी तरह की स्थिति में हैं।

लेकिन जिस विषय पर वे बात कर रहे हैं, उस पर वापस आते हुए, याकूब बेग के बाद भी, संचार की रेखा बनी हुई है। लोग आते- जाते रहते हैं, 1930 के दशक के बाद भी। यहाँ तक कि 1931 में भी, आपने बिल्कुल

सही पहचाना है। यही वह समय था जब आप पाते हैं कि शिंजियांग से कश्मीर की ओर पलायन हो रहा था। उस समय शिंजियांग के बहुत से लोग कश्मीर में बस गए थे और यह दो दशकों तक जारी रहा, लगभग 1951, 1952, 1949 के बाद। तो वह मार्ग वहां था। साल 1951 तक भी, वह वहां था। लेकिन धीरे- धीरे, वह खत्म हो गया। अब आपके पास G219 है, फिर G219, G314, से मिलता है, जो पाकिस्तान आता है। 315 काशगर जाता है। ये सभी चीन निर्मित सुपर हाइवे हैं जो वहाँ है।

जबकि ये ट्रैक, खच्चर ट्रैक और कछार ट्रैक, इतिहास द्वारा भुला दिए गए हैं तो अब मुद्दा यह है कि क्या इसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। क्या हमारे पास सीपीईसी जैसा सीआईईसी हो सकता है? सवाल तो यही है। चीन को खतरे के रूप में देखने के बजाय, क्या हम इसे अवसर के रूप में भी देख सकते हैं? बेशक, मैं जो कह रहा हूँ उससे लोग नाराज़ हो जाएंगे। लेकिन समस्या यह है कि परिस्थितियां मुझे इस तरह सोचने पर विवश करती हैं। अपने पश्चिमी सीमांत, पश्चिमी कमान और वहां तैनात इतनी बड़ी, विशाल सेना, जिसके बारे में आपने वास्तव में समसलप्रास के बारे में भी बात की जहाँ उन्होंने 35 किलोमीटर की सड़क बनाई है, जो सियाचीन को देखती है। चीन और भीरत के बीच शक्ति विषमता के कारण हममें बहुत घबराहट, बहुत डर पैदा होता है।

लेकिन दूसरी तरफ, चीन भी कुशल व्यापारी। 19वीं सदी में बिस्मार्क ने अंग्रेजों के बारे में जो कहा था, वह शायद आज के चीन पर सटीक बैठता है, दुकानदारों का देश। वह अब व्यापारियों का देश बन गया है। क्या हम ऐसा कर सकते हैं? क्या हम यह बदलाव ला सकते हैं? या हम चीन को दूसरे चश्मे से देखते रहेंगे? ये ऐसे सवाल हैं जो बिना किसी जवाब के रह जाते हैं। लेकिन किताब की बात करें तो इसका असली मूल्य इस बात में निहित है कि वह किस तरह की चर्चा को जन्म देती है। किताब का असली मूल्य उन मुद्दों में निहित है जो किताब के बाहर हैं, जिनके बारे में वह आपको सोचने पर मजबूर करती है।

इस अर्थ में, आपने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। मुझे लगता है कि यह एक बहुत अच्छी किताब है और आज के युवाओं को इसे जरूर पढ़ना चाहिए। आप युवाओं को इस किताब को पढ़ना चाहिए और इससे प्रेरणा लेने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही आप उन किताबों को भी जरूर पढ़ें जिनका मैंने उल्लेख किया है। इससे पहले कि मैं भूल जाऊं और अपनी बात समाप्त कर दूँ, मैं आपको एक बात बताना चाहूँगा, हम ऑपरेशन दत्ता खेल के बारे में बहुत ज्यादा बात कर रहे हैं। और हाँ, मैंने सिन्हा साहब की किताब पढ़ी है, मैंने एल.पी. सेन की किताब *स्लेन्डर वाज़ द थ्रेड* पढ़ी है। भारत उस समय क्या कर सकता था, इस बारे में बहुत सी अटकलें लगाई गई हैं।

लेकिन मुझे लगता है कि आप बिल्कुल सही कह रहे हैं शायद हम जितना कर पाए, उससे ज्यादा नहीं कर सकते थे। लेकिन एक क्षेत्र ऐसा है जहाँ हम शायद ज्यादा कर सकते थे, वो है स्कार्दू। स्कार्दू संभव था लेकिन हम इसमें उतनी दिलचस्पी नहीं दिखा रहे थे जितनी आज दिखा रहे हैं। शायद करुणाकरण गुप्ता की एक किताब है, बहुत छोटी सी है, जिसमें इस बारे में बताया गया है। यह उस समय वहां के मामलों की कमान संभालने वाले किसी व्यक्ति के बारे में भी बताती है। जब गिलगित ले लिया गया था तब भी स्कार्दू की उम्मीद बची थी। शायद हमने इतनी बारीकी से गौर नहीं किया। शायद यह वहां नहीं है लेकिन यह कुछ ऐसा है जिस पर हम बाद में चर्चा कर सकते हैं। धन्यवाद। सर, आपका बहुत- बहुत धन्यवाद।

टी.सी.ए. राघवन: आपका बहुत- बहुत धन्यवाद। पैनल में शामिल दोनों सदस्यों को न केवल उनके द्वारा की गई व्यावहारिक टिप्पणियों के लिए बल्कि जिस स्पष्टता के साथ उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए, उसके लिए मैं उनका धन्यवाद करता हूँ। विचार मंच का पूरा विचार पार्श्विक रूप में सोचना और उन संभावनाओं के बारे में विचार करने है जिन पर अन्यथा सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में चर्चा नहीं की जा रही है। इसके साथ ही, आइए कुछ सवालों के जवाब दें। हम हमारे लेखकों और पैनल के सदस्यों से भी पूछे जाने वाले सवालों का जवाब देने का अनुरोध कर सकते हैं। जी हाँ, महोदया। मैं सवाल पूछने या अपने विचार रखने वालों से अनुरोध करता हूँ कि वे संक्षिप्त सवाल पूछें या विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें। कृपया अपनी पहचान भी बताएं।

सुनीता द्विवेदी: धन्यवाद सर, मैं सुनीता द्विवेदी हूँ। अशोक और मैं नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय में सीनियर फेलो थे। क्या यह चल रहा है? धन्यवाद। मैं आम भावना पर प्रतिक्रिया देना चाहती थी और विशेष रूप से अशोक द्वारा उल्लेखित, कि क्या हम युद्ध में और कुछ कर सकते थे। चूंकि उन्होंने लेफ्टिनेंट जनरल सेन की किताब का जिक्र किया है, उस किताब को मैंने भी पढ़ा है, मज़ेदार बात यह है और मैंने किताब को पढ़ते समय कई बार ऐसा महसूस किया कि मुझे नहीं पता कि कोई मुझसे यह कहना चाहता है या नहीं लेकिन रक्षा समिति में माउंटबेटन की उपस्थिति वास्तव में इस बात पर पूर्ण और एकमात्र अधिकार है कि क्या होगा, सिवाय इसके कि जब पटेल उन्हें किनारे कर देते हैं और कुछ विशेष कार्यों की ओर कदम बढ़ाते हैं।

कई बिंदुओं पर मुझे जो समझ में आया, जिसका उन्होंने उल्लेख किया और इसे केवल एक सैन्य व्यक्ति ही सैन्य रिकॉर्ड देखकर हल कर सकता है, जो पूरी तरह से गोपनीय है, हमारे जैसे लोगों के लिए उपलब्ध नहीं है, कि कई बार दिल्ली के बीच सैन्य आवाजाही और सुदृढ़ीकरण भेजने, लोगों को रखने के बीच समन्वय एक ऐसी चीज है जिस पर भारत को ब्रिटिश भूमिका के इस मुद्दे को हल करना है। न केवल पाकिस्तान में ब्रिटिश अधिकारियों बल्कि यहीं दिल्ली में भी।

मैं जिन विशेष घटनाओं का जिक्र करना चाहती हूँ, उनमें से एक है कि- एक दिन एक आदमी खुद को मेजर जनरल बताता है जो यहाँ से भेजा गया है और श्रीनगर जाने से पहले बारामुल्ला के पास एक बहुत ही महत्वपूर्ण क्षण में आंदोलन के आदेश को बदलने की कोशिश कर रहा है और संयोग से वह दूसरे व्यक्ति से पूछ बैठता है कि क्या मुझे ऐसा करना चाहिए? और वह कहता है, आदेश कहाँ है? और फिर वह विस्फोट कर देता है लेकिन जो अधिकारी वहाँ पहुँचता है, यह कहते हुए कि वह बॉस है, वह उस पूरे समय अवधि में कश्मीर में ही रहता है क्योंकि वो कोई घोटाला करने की हिम्मत नहीं करता। लेकिन यह बात बहुत स्पष्ट रूप से गड़बड़ी करना था। क्यों आज़ाद भारत में आज तक किसी भी सैन्य अध्येता ने इस पहलू का अध्ययन क्यों नहीं

किया? मुझे लगता है कि मैं आप जैसे वरिष्ठों की वजह से ही इस बात का ज़िक्र कर रही हूँ। आप इसे आगे बढ़ा सकते हैं। ऐसा किया जाना चाहिए। धन्यवाद।

टी.सी.ए. राघवन: कोई उत्तर? जी हाँ, हाँ।

जयदेव रानाडे: मैं आपसे इस बात पर सहमत हूँ कि इस पर विचार किया जाना चाहिए। लेकिन आपने जो कहा, उसमें मैं यह भी जोड़ना चाहूँगा कि आपने जो कहा, वह ब्रिटिश विश्वासघात का एक हिस्सा था। जब हम आज़ाद हुए, तब भी उन्होंने अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को अपने पास रखने की कोशिश की। और यह संदेश लंदन में नौ- अधिकरण से आया था। संयोग से हमारे कर्मचारियों को इसके बारे में पता चल गया था लेकिन मुझे यकीन है कि यह सब इसलिए हो रहा था क्योंकि पाकिस्तान में ब्रिटिश अधिकारी थे। और यहाँ भी, हमारे पास आज़ादी के बाद ब्रिटिश अधिकारी रहे। मेरे कहने का मतलब है, मैं इसे समझ नहीं सकता। और भले ही हमारे हाथ भरे हों, जैसा कि आपने कहा, अपनी आज़ादी की लड़ाई में। यह स्पष्ट रूप से अक्षम्य है कि हमारे पास ऐसे लोग थे जिन्होंने हमें दबाया था और फिर उन्होंने जारी रखा। लेकिन मुझे यकीन है कि अगर उस इतिहास का अध्ययन किया जाए तो और भी बहुत कुछ सामने आएगा।

टी.सी.ए. राघवन: धन्यवाद। क्या आप कुछ कहना चाहेंगे?

अशोक के. बेहुरिया: मैं असहमत नहीं हूँ, क्योंकि यह वह व्यक्ति है जो सेन की किताब में है और जैसा कि आपने कहा, यह ब्रिटिश विश्वासघात का एक और उदाहरण है। लेकिन हम जो हुआ उसके लिए ब्रिटिशों को दोषी ठहराते रह सकते हैं। हम ऐसा सालों तक कर सकते हैं लेकिन अब समस्या यह है कि वहाँ से आगे कैसे बढ़ा जाए। जो हुआ सो हुआ। हम इस बारे में सोच सकते हैं कि विपरीत परिस्थितियों में काम करने के अपने अधिकार को कैसे न छोड़ा जाए। हम यह सबक ले सकते हैं लेकिन हमें आगे बढ़ना होगा।

टी.सी.ए. राघवन: धन्यवाद।

नूतन कपूर महावर: प्रो. वारिकू ने बताया कि शिंजियांग में चीन की दिलचस्पी 1800 वीं सदी से ही देखी जा सकती है। मेरे कहने का मतलब है कि आपने कुछ उदाहरण दिए हैं। यह बहुत पहले की बात है लेकिन आपने कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जो इस बात को साबित कर सकती हैं। श्री रानाडे ने बताया कि अंग्रेजों की हमेशा से चीनियों को रियायतें देने की नीति रही है। एक विचार यह भी है कि चीनी ग्रेट गेम के शिकार थे। क्या आप इस राय से सहमत हैं?

जयदेव रानाडे: इसलिए मैंने कहा कि वे निष्क्रिय खिलाड़ी थे, इस अर्थ में कि जब अंग्रेज चाहते थे, तो वे उन्हें अपने साथ ले आते थे। दूसरे समय में, वे उन्हें वहीं छोड़ देते थे। चीनी मौजूद थे, लेकिन ज्यादा कुछ नहीं हो रहा था। और जहाँ तक ग्रेट गेम का सवाल है, रिकॉर्ड है, ब्रिटिश रिकॉर्ड है जो दावा करता है कि इसे बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया था क्योंकि जो रूसी वहाँ आया था, जब तक उसे ल्हासा के पास देखा गया और फिर उसे ल्हासा में देखा गया, जब तक वे रिपोर्ट शिमला और बाद में कलकत्ता पहुँची, तब तक उसके साथ आने वाले लगों की संख्या सिर्फ पत्र के प्रसारण अवधि में ही बढ़ गई थी।

और बाद में, जब अंग्रेज वहाँ गए, तो उन्होंने कहा, कोई ख़तरा नहीं है, बस एक सज्जन और एक सहायक हैं। वास्तव में, ब्रिटिश उपस्थिति उनकी तुलना में बड़ी थी। इसलिए, मैं कहूँगा कि ग्रेट गेम ने उस संदर्भ में अपना जीवन शुरू कर दिया लेकिन फिर से मुझे लगता है कि चीनी ऐसे नहीं थे, मेरा मतलब है, चीन भी इन लोगों के सामने बहुत हद तक शक्तिहीन था। और बाद में, अफ़ीम दूसरी वजहों से, वे वास्तव में एक खर्चीली ताकत बन गए थे।

टी.सी.ए. राघवन: अच्छा, जैसा कि आपने कहा, जितनी अधिक चीजें बदलती हैं, उतनी ही वे एक जैसी रहती हैं। सुरक्षा और खुफिया विश्लेषण की प्रकृति में संभावित खतरे को बढ़ाना शामिल है। इसलिए पाकिस्तानियों

ने खुद को यह विश्वास दिलाया कि हमारे पास डूरंड रेखा के साथ 56 वाणिज्य दूतावास हैं और अब हम खुद को कई खतरों के बारे में आश्वस्त कर रहे हैं, कुछ वास्तविक, कुछ काल्पनिक। तो यह खेल का हिस्सा है चाहे वह खेल ग्रेट हो या नहीं। कोई और सवाल या विचार? जी हाँ, माफ करें। माफ करें, माफ करें।

अशोक के. बेहुरिया: चीनी खतरा, चीन का सवाल 1860 के दशक से लेकर 1910 के दशक, '11 के दशक के बीच। साल 1911 में, चिंग राजवंश का अंत हो गया था। रिपब्लिकन सत्ता में आ रहे थे। लेकिन उससे पहले, अगर आप इसे देखें, तो ब्रिटिश अपना खेल खेल रहे थे और बेशक बहुत ज़ोर- शोर से नहीं। वे बहुत दृढ़ थे लेकिन वे मूल रूप से रूसी खतरे को दूर करने की कोशिश कर रहे थे। जब पेट्रोव्स्की को काशगर में एक वाणिज्यदूत का दर्जा दिया गया, तो उन्होंने कहा, हमारा क्यों नहीं? मैककार्टनी को भी दिया जाना चाहिए था। मैककार्टनी को नहीं दिया गया। मैककार्टनी बस वहीं रह गया। उन्होंने उसे बस बर्दाश्त किया। उन्होंने उसे कोई पद, राजनयिक दर्जा नहीं दिया।

इसलिए ब्रिटिश इस बात पर विचार कर रहे थे कि चीन को इस तरह से अपने पक्ष में किया जाए कि रूस यहाँ घुस न पाए। इसलिए जब याकूब बेग 12 साल तक क्षितिज पर उभरा, तो उसने अपना दबदबा बनाए रखा। चीनी लगातार उसे हराने की कोशिश कर रहे थे। उस अवधि के दौरान, ब्रिटिश वास्तव में चीन के खिलाफ याकूब बेग के साथ गठबंधन करने की कोशिश कर रहे थे। जी हाँ, उन्हें लगा कि याकूब वहाँ बफ़र ज़ोन बना लेगा, जो वास्तव में उनके लिए फ़ायदेमंद होगा। इसलिए वे मूल रूप से तगदुंबश क्षेत्र में यह खेल खेलने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने हुंजा को रकशम पर अपना दावा छोड़ने के लिए मज़बूर किया जबकि उसे यारकंद में संपत्ति दी गई थी। इतना ही नहीं ताशकुरगंज में भी। ताशकुरगंज तक उसकी रिट चलती थी। क्योंकि वह ताशकुरगन और पूर्व में रसकम, शाहिदुल्लाह तक उगाही किया करते थे।

तो, यह एक व्यापक क्षेत्र था और चीनियों ने याकूब बेह के चले जाने के बाद भी उन्हें अनुमति दी थी। 1890 के दशक में भी, चीनियों ने कहा कि हुंजा का शासन वहां चलता है। तो, इस अर्थ में, भले ही चीनी ऐसा कह

रहे थे, अंग्रेज उनसे कह रहे थे कि आओ और यहाँ घुसपैठ कर लो। ताकि, उनके और रूसियों के बीच एक अधिक विश्वसनीय बफ़र हो।

टी.सी.ए. राघवन: कोई और सवाल? जी हाँ।

पुनीत गौड़: महोदय, यह इस बात से संबंधित है कि क्या किया जा सकता था। दरअसल, मैं कज़ाकिस्तान में था और मेरे एक सहकर्मी उइगर थे। हम उस समय कई बातों पर चर्चा कर रहे थे। जब वे कह रहे थे, क्योंकि यह विशेष किताब कश्मीर और शिंजियांग से संबंधित है, वे मुझे बता रहे थे कि एक समय में कश्मीर उइगरों के लिए स्वर्ग था। वे कह रहे थे कि मुझे लगता है कि भारत उस समय को याद करता है जब वह ऐसा कर सकता था और उइगरों के इस मुद्दे को उठाया जा सकता था। मुद्दा अभी भी बना हुआ है। वे मुझे बता रहे थे कि वर्तमान समय में भी भारत वह नहीं कर रहा है जो वह कर सकता है, शिंजियांग और कश्मीर के संदर्भ में उइगर मुद्दे के साथ संभव हो सकता है। मैं बस उस पर प्रकाश डालना चाहता हूँ।

टी.सी.ए. राघवन: जी हाँ, कृपया अपने विचार व्यक्त करें।

के. वारिकू: ये सच है। जैसा कि मैंने कहा है, भारत हमेशा से ही उइगरों पर चीनी चिंताओं के प्रति संवेदनशील रहा है और अब भी संवेदनशील बना हुआ है। यहाँ तक कि शिंजियांग से कश्मीर को ओर पलायन के दौरान भी, उस समय भी, शिंजियांग में चीनी अधिकारियों ने अपनी चिंता जताईं क्योंकि पूर्व उइगर अधिकारी अपने साथ बहुत सारा सोना लेकर आए थे। फिर चीनी, ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों ने उसे ज़ब्त कर लिया और उन्हें वापस कर दिया। इसलिए, ब्रिटिश भारत और आज़ाद भारत की सरकार हमेशा से ही शिंजियांग में चीन के सरोकार के प्रति संवेदनशील रही है।

तो, विशेष रूप से उइगरों के बारे में। कुछ साल पहले कुछ उइगर एक सम्मेलन के लिए धर्मशाला आने वाले थे। मुझे लगता है कि वे नहीं आए, यह ढोलकुल सवाई और अन्य, उन्हें वीज़ा नहीं दिया गया।

अतहर ज़फ़र: धन्यवाद, सर। मैंने भी यह किताब पढ़ी और इससे बहुत अलग एवं जानकारी से भरा पाया है। लेह मार्ग खोलने की संभावना के बारे में, सर, आपने कहा, आपने इस विषय पर चर्चा की, लेकिन क्या सीमा तय होने तक इसे खोल पाना संभव है? और साथ ही, क्या आईएनएसटीसी, मध्य एशिया या रूस से अन्य लोगों के दांव-पेंच का कोई विकल्प हो सकता है?

के. वारिकू: यह कोई विकल्प नहीं हो सकता लेकिन यह विश्वास निर्माण का एक तरीका है, विशेष रूप से भारत और चीन के बीच विश्वास निर्माण का क्योंकि इससे ल्हासा में बौद्ध तीर्थयात्रियों और मानसरोवर में भारतीय तीर्थयात्रियों की आवाजाही सरल हो जाएगी।

अतहर ज़फ़र: नहीं, मैं बस इसे विस्तारित करना चाहता हूँ यदि इसे मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप या रूस तक विस्ताविरता किया जा सके।

के. वारिकू: देखिए, इसके विस्तार की कोई जरूरत नहीं है, यह पहले से ही मौजूद है। आपको उस मार्ग से जुड़ना होगा। यह चीन पर निर्भर करता है, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि भारत और चीन दोनों इस मुद्दे को कैसे उठाते हैं, चीन इस पर कैसे प्रतिक्रिया देता है और फिर यह समाधान से जुड़ा हुआ है, मुझे लगता है, जैसा कि मैंने कहा है, आपने का जॉनसन, अर्दाघ, मुझे लगता है कि यह मैककार्टनी- मैकडोनाल्ड लाइन संभावित समाधान है लेकिन मुझे नहीं पता कि चीनी इसे स्वीकार करेंगे या नहीं और उस समय जब मैकडोनाल्ड ने इस लाइन का प्रस्ताव रखा था तब चीन ने इस पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी। ऐसा माना जाता था कि ब्रिटिश भारतीय अभिलेखों में कहा गया है कि यह माना जाता है कि वे इस रेखा को स्वीकार करते हैं, लेकिन एक बार फिर से यह...

टी.सी.ए. राघवन: समस्या यह है कि, पहली समस्या अब किसी भी रेखा को स्वीकार करना है क्योंकि हमारे पास एक संवैधानिक रूप भी है जिसे हमें सुरक्षित रखना है, क्योंकि, मेरे कहने का मतलब है कि कोई सैद्धांतिक बहस कर सकता है कि वेस्टफाल- जॉनसन रेखा पर आधारित हमारी स्थिति कितनी विश्वसनीय थी लेकिन वह बहस समाप्त हो चुकी है। आप इस स्तर पर इसे फिर से नहीं खोल सकते।

मदन यादव: सबसे पहले, भू- राजनीति पर इन बहुत महत्वपूर्ण किताबों के लिए बधाई, सर। मैं डॉ. मदन यादव, मैं इग्नू मुख्लायल में राजनीति विज्ञान विभाग में शिक्षक हूँ। प्रो. वारिकू जेएनयू में मेरे पर्यवेक्षक हैं। सर, द क्रॉसरोड- कश्मीर- इंडिया ब्रिज़ टू द शिंजियांग, महोदय, हम जानते हैं कि महामारी के समय में बीते चार, पांच सालों में चीन किस तरह की चालें चल रहा है। चौराहा यहीं है, लेकिन लद्दाख, गलवान और दूसरी सामरिक सीमाओं के जरिए भारतीय क्षेत्र पर कब्ज़ा करना चीन की चाल है। हम कह सकते हैं कि सबसे कम टकराव चीन- भारत सीमा पर है।

दूसरी बात, सर, आपको ऐसा क्यों लगता है कि चीन बहुत आक्रामक है और भारत रक्षात्मक, क्योंकि हमारे प्रधानमंत्री चीन के खिलाफ एक भी शब्द बोलने को तैयार नहीं हैं, चाहे भारत- चीन सीमा पर कुछ भी हो रहा हो।

टी.सी.ए. राघवन: उत्तर दीजिए सर।

के. वारिकू: मुझे लगता है कि भारत को चीन जितना ही मजबूत होना चाहिए। इसलिए हम चीन को केवल मजबूत बनकर ही संभाल सकते हैं। वे जानते हैं कि भारत, बीजिंग की मेरी कई यात्राओं के दौरान, मैं उनके सीमांत क्षेत्रों में गया था जहाँ वे सीमांत मुद्दों से निपटते हैं। इसलिए उनकी धारणा यह है कि भारत में, यदि एक पार्टी आती है तो वे एक पद्धति पर विचार करते हैं, उस पद्धति को अपनाते हैं, विपक्ष दूसरी पद्धति

अपनाता है। दूसरी पार्टी कोई और पद्धति पर विचार करने लगती है। भारत में कोई एकीकृत पद्धति नहीं है, कार्रवाई में एकता/ समरूपता नहीं है।

इसलिए उनकी धारणा इस विचार पर आधारित है जो हमारे पास नहीं है क्योंकि उनके पास एक कमांड लाइन है और उनके पास विचार एवं कार्य में पूरी समरूपता है, ऊपर से नीचे तक, शिंजियांग या तिब्बत में एक मोची तक क्योंकि मैं मेज़र अहलूवालिया के अभियान का हिस्सा था, सांस्कृतिक अभियान जो उन्होंने 1994 में मध्य एशिया, शिंजियांग, तिब्बत आदि में किया था। इसलिए हम जहाँ भी गए, वांगडू नाम का लद्दाखी तस्वीरें ले रहा था, वह 5 जुलाई का दिन था, दलाई लामा का जन्मदिन, ल्हासा में। उनके मठ के बाहर, मैं उनका नाम भूल गया, जकुन या कुछ और, जकुन, जोकुन क्योंकि वे गायों को दूह रहे थे, एक मोची आता है, मुझे नहीं पता वह बुद्धिमान व्यक्ति था या नहीं लेकिन उसने उसका कैमरा छीन लिया और उसे कोई फोटो नहीं लेने दिया क्योंकि तस्वीर दलाई लामा का जश्न मना रहे तिब्बतियों की होती।

और फिर, 1994 में, आज 30 साल हो गए हैं, उस समय, जकुन में हर तरफ, उन्होंने जगह- जगह पिकेट लगाए थे, वहाँ सीसीटीवी लगे थे, वे लोगों की एक- एक हरकत पर नज़र रख रहे थे। शिंजियांग और विशेष रूप से तिब्बत में सुरक्षा की ठोस व्यवस्था थी, जिसे मैंने देखा है। कोई भ्रम नहीं, कोई उलझन नहीं।

टी.सी.ए. राघवन: जी हाँ**,** अपना सवाल पूछें।

नंदिनी खंडेलवाल: मेरा आपसे बहुत छोटा सा सवाल है, सर। आपने अपने भाषण में एक सवाल उठाया कि हमें चीन को चुनौती के रूप में क्यों देखना चाहिए, अवसर के रूप में क्यों नहीं? तो मैं बस इतना सा सवाल पूछना चाहती हूँ कि - चीन की मानचित्रकला की आक्रामकता को देखते हुए भारत किस तरह से चीन को एक अवसर के रूप में देख सकता है?

अशोक के. बेहुरिया: मुझे पता था कि यह सवाल पूछा जाएगा। नहीं, मैंने कहा कि, किताब को देखते हुए, इसमें पुल की बात की गई है। तो क्या कोई पुल है? तो क्या हम इसे एक अवसर के रूप में देख सकते हैं? आपके सवाल पर वापस आते हैं, मैं समझता हूँ कि आप क्या कहना चाहती हैं। दरअसर, हम एक देश के तौर पर बहुत अधिक विचार कर रहे हैं। हम विद्वान क्योंकि हमें सांख्यिकीविद् होना बंद कर देना चाहिए। देश के नज़रिए से, यह कुछ ऐसा ही लग रहा है। लेकिन अगर आप इतिहास को एक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, प्रक्रियाओं के समामेलन के रूप में, तो इसमें अलग- अलग प्रक्रियाएं काम करती हैं।

साल 2020 में, आपने सामने से चीन के सभी ऐप पर प्रतिबंध लगा दिया। उस समय, चीन के साथ आपका व्यापाल लगभग 70 अरब डॉलर ($70 billion) का था। आज वे कहाँ हैं? इसलिए भारत में कुछ लोगों ने चीन में कुछ अवसर तलाशें हैं और इसे अपने लिए अच्छे लाभ में बदल दिया है या नहीं। देश चीन की तरफ अलग तरीके से देख रहा है। लेकिन देश के लोग ऐसी प्रतिक्रियाएं शुरू कर रहे हैं जो, कौन जानता है, दोनों देशों को मित्र बना सकती हैं। क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय राजनीति के एक छात्र के रूप में, जटिल अंतरनिर्भरताएं पैदा करेगा, मैं उनके शब्द से रोमांचित हूँ।

इसलिए देशों के बीच इस प्रकार की जटिल अंतरर्निर्भरता के लिए एक अवसर है। इसलिए देशों को देखने के लिए सिर्फ यही एक नज़रिया और लेंस नहीं है। चीन को देखिए। क्या आपको लगता है कि चीनी हित या फिर अमेरिकी हित, भारतीय हित हमेशा एक ही दिशा में आगे बढ़ेंगे? वे अपने हित को उतना ही आगे बढ़ाएंगे जितना आप अपने हित को आगे बढ़ाएंगे। लेकिन एक दूसरे को अवसर के रूप में देखने का कोई तरीका होना चाहिए तभी आप इस मुद्दे को आगे ले कर जा सकते हैं।

लेकिन यदि हम इसे बहुत अधिक यथार्थवादी नज़रिए से देखेंगे, जहां यह शक्ति संतुलन है, जिसे अवसर कहा जाता है, तो वह निश्चित रूप से किसी और के लिए नुकसानदेह होगा, तो यह हो चुका। इतिहास उस तरह से नहीं चलता। मैं तो यही कहना चाहूँगा।

टी.सी.ए. राघवनः बहुत- बहुत धन्यवाद। मुझे लगता है …..

नूतन कपूर महावर: सर, मैं उन सज्जन के प्रश्न का उत्तर देना चाहती हूँ। मै विदेश सेवा हूँ और मैंने 28 वर्ष सेवा दी है। राजदूत राघवन मेरे बॉस रहे हैं। मैंने उन्हें रिपोर्ट किया है और उन्होंने कई वर्षों तक महत्वपूर्ण पदों पर काम किया है। एक बात आपको याद रखनी चाहिए कि भारतीय विदेश नीति में, एक बात है, पार्टी लाइन से परे, आज़ादी के बाद से विदेश नीति के मुद्दों पर आम सहमति है। विचारों में भिन्नता हो सकती है और अलग- अलग दल संसद में या यहाँ तक कि मीडिया के जरिए सरकार से उनके द्वारा किए गए कार्यों पर प्रतिक्रिया, स्पष्टीकरण मांग सकते हैं जो उनका अधिकार है। एक बार फिर, यह कुछ ऐसा है जिसकी हम सभी अपने देश में प्रशंसा करते हैं और जो कई अन्य विकासशील देशों में नहीं है।

एक बात मुख्य मुद्दों पर और चीन जैसे मुद्दे पर, मेरे कहने का मतलब है कि यह सोचना कि राजनेता एक तरफ नहीं होंगे, यह वास्तव में कुछ ऐसा है जो सही नहीं है। ठीक है?

टी.सी.ए. राघवन: बहुत बढ़िया, आपका बहुत- बहुत धन्यवाद। हमने बहुत ही रोचक चर्चा कि लेकिन मुझे लगता है कि आज के कार्यक्रम की समय- सीमा समाप्त हो रही है। लेकिन मैं सबसे पहले एक बार फिर प्रोफेसर वारिकू का धन्यवाद करना चाहूँगा और मुझे आशा है कि वे अपडेट पर काम करेंगें और किताब का एक नया संस्करण भी हमारे बीच होगा क्योंकि चीजें, उनके पिछले अध्यायों में बताई गई बातों से कुछ हद तक बदल चुकी हैं। मुझे लगता है कि यह भी अच्छा है कि हम उन बड़े मुद्दों पर विचार करें जो किताब में उठाए गए हैं और वह प्रश्न जो चीन की मानचित्रकला की आक्रामकता के बारे में पूछा गया था।

मुझे लगता है कि यह समझना जरूरी है कि भारत में कई तरह के विचार है। इसलिए अगर आप दिल्ली में रह रहे हैं तो आईसीडब्ल्यूए से आईडीएसए, ओआरएफ या आईपीसीएस तक आपको चीन के बारे में एक जैसा

नज़रिया मिलेगा। यह सच है लेकिन अगर आप दूसरी तरफ यानि फिक्की (एफआईसीसीआई) या सीआईआई में चले जाएं, तो आपको अलग नज़रिया देखने को मिलेगा। सच तो यह है कि किसी भी समय कई तरह की बातचीत हो रही होती है। इसलिए जब हमारी सेना और सुरक्षा बिरादरी एक ही नज़रिया सामने रख रही है, आर्थिक सर्वेक्षण कहेगा कि चीन से निवेश के लिए रास्ता खोलने का समय आ गया है।

इसलिए मुझे लगता है कि इस तथ्य के प्रति सचेत रहना अच्छा है कि कई प्रकार के दृष्टिकोण हैं और इनमें से किसी भी दृष्टिकोण को आसानी से खारिज नहीं किया जा सकता है। जब आप इसे नीतिगत नज़रिए से देखते हैं तो आपको यह देखना होगा कि इष्टतम क्या है क्योंकि कोई भी समाधान स्पष्ट नहीं है। यदि हम चीन के मानचित्रण या अन्य आक्रामकता के आधार पर किसी नीति के लिए प्रतिबद्ध हैं तो उस नीति का तार्किक निष्कर्ष तक पालन करने का अर्थ होगा कि आपके सकल घरेलू उत्पाद में 2 या 3 प्रतिशत की कमी आ जाएगी, कम- से- कम आगामी पांच से सात वर्षों के लिए, शायद उससे भी अधिक समय के लिए।

इसलिए ये बहुत मुश्किल व्यक्तिपरक निर्णय है। इसलिए, जैसा कि प्रोफेसर बेहुरिया ने कहा, अलग- अलग नज़रियों के प्रति उदार होना अच्छा है और विशेष रूप से विचार समूहों में, सांख्यिकीविद् नज़रिए को अपनाने से बचना नहीं चाहिए क्योंकि सारा मामला गौण विचार या अलग तरीके से सोचने से जुड़ा है। ऐसा करने के लिए आईसीडब्ल्यूए बहुत अच्छा मंच है। एक बार फिर, मुझे आमंत्रित करने और इतनी अच्छी चर्चा की मेज़बानी करने का अवसर देने के लिए, नूतन, आपको बहुत- बहुत धन्यवाद।

पुनीत: धन्यवाद, सर। भारतीय वैश्विक परिषद की ओर से मैं राजदूत टी.सी.ए. राघवन सर को आज की पुस्तक चर्चा की अध्यक्षता करने के लिए सहमत होने, तथा पैनल में शामिल सम्मानित सदस्यों- जयदेव रानाडे सर, डॉ. अशोक के. बेहुरिया सर, को उनके बहुमूल्य विचार प्रकट करने के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। प्रोफेसर के, वारिकू द्वारा रचित पुस्तक, ***द क्रॉसरोडः कश्मीर इंडियाज़ ब्रिज़ टू शिंजियांग***, पर आपकी विचारपूर्ण टिप्पणियों से हमें बहुत लाभ हुआ है। हम प्रतिभागियों में से मुझ समेत विशेषज्ञों द्वारा उठाए गए सवालों के

साथ- साथ मूल्यवान टिप्पणियों की सराहना करते हैं। हम आज के कार्यक्रम में शामिल होने के लिए सभी प्रतिभागियों का विशेष आभार व्यक्त करते हैं।

आईसीडब्ल्यूए के शोध कार्यों, कार्यक्रमों और आउटरीच कार्यक्रमों के बारे में अधिक जानकारी के लिए हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया हैंडल- एक्स, लिंक्डइन, यूट्यूब और फेसबुक, पर जाएं। इसके साथ ही, मैं आप सब से अनुरोध करता हूँ कि कृपया उपकक्ष में हमारे साथ चाय का आनंद लें। आप सभी को धन्यवाद।